# नव तत्त्व

*** तत्त्वावधान ***

प्रज्ञानिधि आचार्यश्री **विजयराजजी म.सा.**



*** प्रकाशक ***

श्री अ.भा. साधुमार्गी शांत क्रान्ति जैन श्रावक संघ

# नव तत्त्व

* तत्वावधान *

प्रज्ञानिधि आचार्यश्री **विजयराजजी म.सा.**



* प्रकाशक *

श्री अ.भा. साधुमार्गी शांत क्रान्ति जैन श्रावक संघ

**कृति** : नव तत्त्व

**तत्वावधान** : प्रज्ञानिधि आचार्य श्री विजयराजजी म.सा.

**संस्करण** : प्रथम

**प्रतियां** :1000

**प्रकाशक** : श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी शांत क्रांति जैन श्रावक संघ

**मुद्रक** : **जय ग्राफिक्स**, चेन्नई
98408 94777

**मूल्य** : 10/-

**सौजन्य** : **श्रीमती पाँचीबाई–श्री मिश्रीमलजी बोहरा**
की पुण्य स्मृति में
**जवरीलाल, अशोककुमार, महावीरकुमार,**
**सुभाषकुमार, नवीन, मेहुल बोहरा,**
रायपुरम, चेन्नई (पिपलिया कलां)

**प्राप्ति स्थान** : **1. श्री अ.भा.सा.शांत क्रान्ति जैन श्रावक संघ**
केन्द्रीय कार्यालय : 279 एच, नवकार भवन
हिरण मगरी सेक्टर–3, उदयपुर (राज.) 313 002.
फोन : 0294–2461588
**2. जवरीलाल बोहरा** (राष्ट्रीय महामंत्री)
नं. 21, ईस्ट कलमण्डपम् रोड़, रायपुरम, चेन्नई – 13.
044–2595 3030, 094440 13916

# प्रकाशकीय

आगम ज्ञान की प्राप्ति का प्रारम्भ थोकड़ों से होता है, मुमुक्षु भाव लेकर आगे बढ़ने के इच्छुक विरक्त अथवा विरक्ति को अपना आदर्श मानने वाले तत्व जिज्ञासुओं के लिए थोकड़ों का प्रारम्भिक ज्ञान आवश्यक माना गया है, इसी लक्ष्य की सम्पूर्ती के लिए हमारे पूर्वाचार्यों देवों ने अनन्त कृपा व अनुग्रह करके समय-समय पर थोकड़ों का संकलन, नवीनीकरण तथा संवर्धन-अभिवर्धन करके स्तीक ज्ञान के जिज्ञासुओं की पिपासा शांत करने का उपक्रम किया है।

प्रत्येक आत्मार्थी जनों को नव तत्त्व का ज्ञान होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, इसी उद्देश्य की सम्पूर्ती का लक्ष्य बनाकर यह नवतत्त्व का संकलन तैयार किया गया है। परम श्रद्धेय, प्रज्ञानिधि आचार्य प्रवर पूज्य श्री विजयराजजी म.सा. के निर्देशन में यह नवतत्त्व ज्ञान-विज्ञान का प्रकाशन करने का सौभाग्य हमारे संघ को प्राप्त हुआ है। एतदर्थ हम पूज्य गुरुदेव के हृदय से आभारी है। सुज्ञ जिज्ञासु तत्त्व पिपासु मुमुक्षु अध्ययनार्थी इस पुस्तक के माध्यम से अपने तत्त्व ज्ञान में अभिवृद्धि करेंगे इसी आशा और विश्वास के साथ।

पुस्तक के प्रूफ़ संशोधन में यथा समय पूरी सावधानी बरती है फिर भी कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए हार्दिक क्षमा याचना।

पाठकों से अनुरोध है वे अवश्य इंगित करें ताकि आगे संस्करणों में सुधार किया जा सके।

निवेदक

| | |
|---|---|
| हेमन्त कोठारी | जंवरीलाल बोहरा |
| अध्यक्ष | महामंत्री |

अ.भा. साधुमार्गी शांत क्रांति जैन श्रावक संघ

## नवतत्त्व का थोकड़ा

**जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावाऽऽसवो तहा।**
**संवरो णिज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव।।**

**- उत्तराध्ययन सूत्र,** 28-14

**नव सब्भाव पयत्था पण्णत्ता तंजहा-जीवा अजीवा, पुण्णं, पावो, आसवो, संवरो, णिज्जरा, बंधो, मोक्खो।**

**-स्थानांग सूत्र** 9

**नव तत्त्वों के नाम** : जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

## नवतत्त्वों के स्वरूप

**1.जीवतत्त्व** : जिसमें चेतना शक्ति अर्थात् ज्ञान हो उसे जीव कहते हैं। जीव सुख-दुख को जानता है, सुख-दुख का कर्ता और भोक्ता है। सांसारिक जीव में पर्याप्ति, प्राण गुणस्थान योग तथा उपयोग आदि होते हैं। यह आठ कर्मों का कर्त्ता है और पुण्य-पाप का भोक्ता है। जीव भूतकाल में जीव था, वर्तमान में भी जीव है और भविष्यकाल में भी जीव रहेगा। तीन काल में भी जीव अजीव में नहीं बदलता है। जीव को अजीव करने की शक्ति स्वयं तीर्थंकर में भी नहीं है न ही किसी देवी देवता में।

**2.अजीवतत्त्व** : जीव का प्रतिपक्षी तत्त्व अजीव है। वह जड़ अर्थात् चेतना से हीन, कर्मों का अकर्त्ता, सुख-दुःख का अभोक्ता, अनादि, सदा शाश्वत है। यह सदाकाल निर्जीव रहने से अजीव कहलाता है। किसी भी तीर्थंकर अथवा देवी-देवताओं में भी यह शक्ति नहीं है कि वे अजीव को जीव बनादे। इसमें पर्याप्ति, प्राण, गुणस्थान, योग और उपयोग आदि नहीं होते हैं। यह भूतकाल में भी अजीव था, वर्तमान में भी अजीव है और भविष्य में भी अजीव रहेगा।

**3.पुण्यतत्त्व** : जो आत्मा को पवित्र करे, जिसके उदय से साता रूप सुख की प्राप्ति होती है उसे पुण्य तत्त्व कहते हैं। पुण्य शुभ प्रकृति रूप है और शुभ योगों से बंधता है। पुण्य का फल प्रिय होता है और सुखपूर्वक भोगा जाता है। पुण्य का बांधना कठिन और भोगना सहज-सरल है। इसके उदय में जीव को सब तरह के सुखों की प्राप्ति होती है। धर्मकरणी के अनुकूल सामग्री अर्थात् मनुष्य भव आर्य क्षेत्र, पंचेन्द्रिय शरीर आदि सबकी प्राप्ति पुण्य से होती है। यह स्वर्णाभूषणों के समान है।

**4.पापतत्त्व** : जो आत्मा को मलीन करके नीचे गिरावे, जिसके उदय से दुःख की प्राप्ति हो, उसे पाप तत्त्व कहते है। पाप अशुभ प्रकृति रूप है और अशुभ योगो से बंधता है। पाप का फल कड़वा अर्थात् पूर्णतः अप्रिय अनिष्ट, अकान्त, अमनोज्ञ होता है, जो दुःख पूर्वक भोगा जाता है। पाप बांधते समय अच्छा लगता है किन्तु भोगते समय बुरा लगता है। यह आत्मा को दुःखी बनाता है। यह बेड़ी के समान बन्धन कारक है।

**5.आश्रवतत्त्व** : कर्मों के आने को आश्रव कहते हैं। जिस क्रिया के द्वारा आत्मा में शुभ अशुभ कर्म आते हैं, उसे आश्रव तत्त्व कहते हैं। जीव रुपी तालाब में कर्मरुपी पानी आश्रव रूपी नालों द्वारा आता है।

**6.संवरतत्त्व** : कर्मों के आवगमन को रोक देना संवर है। जिस क्रिया के द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्मों का आना रुकता है, उसे संवर तत्त्व कहते हैं। जीव रुपी तालाब में आश्रव रुप नालों द्वारा आता हुआ कर्म रूपी पानी सम्यक्त्व-व्रत-प्रत्याख्यानादि रूप पाल द्वारा रुकता है।

**7.निर्जरातत्त्व** : क्षीर-नीर की तरह आत्मा के साथ एक स्वरुप हुए कर्म पुद्गल जिस क्रिया द्वारा आंशिक रुप से क्षय किए जाए अर्थात् आत्मा से अलग किए जाए, उसे निर्जरा तत्त्व कहते हैं। संक्षिप्त में कहा जाए तो कर्मों का उदय में आकर झड़ जाना निर्जरा है। जीवरूपी कपड़ा कर्म रूपी मैल से मलिन है उसे ज्ञान रूपी जल, शील-संयम रूपी साबुन एवं तप रूपी अग्नि द्वारा

निर्मल करना निर्जरा है।

**8.बंधतत्त्व** : आश्रव द्वारा आए हुए कार्मण पुद्गलों का आत्मा से पूर्वबद्ध कर्मों के साथ क्षीर-नीर की तरह अथवा लोहपिण्ड एवं अग्नि की तरह एक रुप हो जाना बंध तत्त्व कहलाता है। योग और कषाय कर्मबन्ध के कारण है।

**9.मोक्षतत्त्व** : निर्जरा द्वारा आठ कर्मों का क्षय हो जाने पर यानी आत्मा से सम्पूर्ण कर्मों के अलग हो जाने पर आत्मा का सदा के लिए अपने स्वरुप में स्थित हो जाना मोक्ष तत्त्व कहलाता है।

इन नौ तत्त्वों में से तीन तत्त्व - जीव, अजीव और पुण्य तत्त्व जानने योग्य है। (पुण्य तत्त्व व्यवहार नय की दृष्टि से ज्ञेय, नैगमनय की दृष्टि से उपादेय और निश्चय कर दृष्टि से हेय है। इसे समझाने के लिए नाव का दृष्टान्त दिया जाता है। एक व्यक्ति नदी पार करना चाहता है, उसके लिए नाव उपादेय है। नाव में बैठ जाने पर नाव ज्ञेय है क्योंकि उस समय उसे न नाव ग्रहण करना है और न छोड़ना ही है। नदी के दूसरे किनारे पहुँचने पर नाव हेय है, क्योंकि नाव छोड़ें बिना उस किनारे पर स्थित नगर में नहीं जा सकता।)

तीन तत्त्व पाप, आश्रव और बंध छोड़ने योग्य है और तीन तत्त्व - संवर, निर्जरा और मोक्ष ग्रहण करने याग्य है।

नवतत्त्वों मे पुण्य, पाप, आश्रव और बंध ये चार रूपी है। जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये चार अरुपी है। अजीव पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा रुपी तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल की अपेक्षा अरूपी है।

नव तत्त्वों में एक तत्त्व जीव, एक अजीव शेष सात तत्त्व जीव-अजीव की पर्याय रुप है अर्थात् जीव-अजीव के कारण से ये सातों तत्त्व होते हैं।

# 1.जीवतत्त्व

निश्यच में (संग्रह नय की अपेक्षा) जीव का भेद एक ही है। व्यवहार में जीव के 2 से 14 तक तथा 563 भेद होते हैं

जीव का एक भेद – उपयोग लक्षण।

जीव के दो भेद – संसार और सिद्ध अथवा त्रस और स्थावर

जीव के तीन भेद – स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद।

जीव के चार भेद – नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता।

जीव के पांच भेद – एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय

जीव के छः भेद – पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय

जीव के सात भेद – नरक, देव, देवी, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मनुष्यिनी।

जीव के आठ भेद – नरक , तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गतियों के अपर्याप्त और पर्याप्त।

जीव के नौ भेद – पाँच स्थावर (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय) और चार त्रस (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

जीव के दस भेद – एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, इन पाँच के पर्याप्त और अपर्याप्त

जीव के ग्यारह भेद– एकेन्द्रिय आदि पाँच के अपर्याप्त और पर्याप्त ये दस और ग्यारहवाँ अनिन्द्रिय।

जीव के बारह भेद – पृथ्वीकाय से त्रसकाय तक के अपर्याप्त और पर्याप्त

जीव के तेरह भेद – छह काया के अपर्याप्त और पर्याप्त ये बारह और तेरहवाँ

अकायिक (सिद्ध भगवान)।

जीव के चौदह भेद - सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय- इन सात के अपर्याप्त और पर्याप्त।

जीव के 563 भेद - चौदह नारकी, अड़तालीस तिर्यंच, तीन सौ तीन मनुष्य और एक सौ अट्ठाणु देवता।

## नरक के चौदह भेद

सात नारकी के नाम : घम्मा, वंसा, सीला, अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई।

सात नारकी के गोत्र : रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमाप्रभा(तमस्तमा प्रभा) या महातम प्रभा।

इन सात के अपर्याप्त-पर्याप्त 14 भेद है।

पहली नारकी में जले हुए कोयले के समान रत्न हैं वहाँ उन रत्नों की प्रभा पड़ती है अतः पहली नारकी को रत्न प्रभा कहते हैं।

दूसरी नारकी में तीखे-तीखे कंकर है जो छूरी और तलवार की धार से भी अधिक तीखें हैं इसलिए दूसरी नारकी का नाम शर्कराप्रभा है।

तीसरी नारकी में बालू रेत की अधिकता है। यह बालू भड़भूंजा की भाड़ एवं लुहार की एरण से भी अधिक तपती है अतः तीसरी नरक का नाम बालुका प्रभा है।

चौथी नारकी में खून एवं मांस के कीचड़ की बहुलता है अतः इसका नाम पंकप्रभा है।

पांचवी नारकी में धुएँ की अधिकता है। यह धुँआ सोमलखार आक एवं धतूरे के धुएँ से भी अधिक खारा है इसलिए इसका नाम धूमप्रभा है।

छठी नारकी में अन्धकार की बहुलता है। सावन भादवे का महीना हो, अमावस्या की रात्रि हो, सघन बादल छाए हुए हो, आसमां में एक तारा नहीं

चमकता हो और धरती पर एक दीपक भी जला हुआ न हो, ऐसी स्थिति में रात्रि के बारह बजे तलघर में जितना प्रगाढ़ अन्धकार होता है उससे भी अनन्त गुणा अन्धकार छठी नारकी में रहता है, इसलिए उसका नाम तमः प्रभा है।

सातवीं नारकी प्रगाढ़ अंधकार से परिपूर्ण है। सावन भादवे की अमावस्या की रात्रि में बारह बजे सघन बादल से गहरा अंधेरा हो, आसमां में एक तारा न हो और धरती पर एक दीपक भी जला हुआ न हो, तब नीचे सातवें तलघर में जितना प्रगाढ़ अन्धकार होता है उससे भी अनन्तगुणा घोर अन्धेरा सातवीं नरक मे सदा रहता है। इसलिए इस नारकी का नाम तमतमा प्रभा है।

शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखने वाली अनादिकाल से प्रचलित संज्ञा को नाम कहते है और शब्दार्थ का ध्यान रखकर किसी वस्तु का नाम दिया जाता है, उसे गोत्र कहते हैं अर्थात् नाम अर्थरहित होता है और गोत्र अर्थयुक्त होता है।

पहली नरक का पिंड एक लाख अस्सी हजार योजन मोटा है। एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर है और एक हजार योजन की ठीकरी नीचे है। अर्थात् ऊपर और नीचे एक एक हजार योजन छोड़कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन की पोलार है जिसमें तेरह पाथडे और बारह आंतरे हैं। पाथड़ों में पहली नारकी के असंख्यातानेरिया रहते हैं। आंतरो में से ऊपर के दो आंतरे खाली हैं शेष दस आंतरों में दस जाति के भवनपति देवता रहते हैं। पहली नरक में 30 लाख नरकावास है। शेष सभी नरकों का विवरण तालिका 1 में है

| नरक | नरक पिण्ड की मोटाई (योजन में) | नरक की ठीकरी की मोटाई | ठीकरी के मध्य के पोलार की मोटाई | पाथड़ा | अन्तरा | नरकावास | वेदना | योनी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | 1,80,000 | 1-1हजार योजन की ठीकरी है। बीच में 1से6 तक ऊपर नीचे अमुक-अमुक पोलार है। | 1,78,000 | 13 | 12 | 30 लाख | उष्ण | शीत |
| 2. | 1,32,000 | | 1,30,000 | 11 | 10 | 25 लाख | उष्ण | शीत |
| 3. | 1,28,000 | | 1,26,000 | 9 | 8 | 15 लाख | उष्ण | शीत |
| 4. | 1,20,000 | | 1,18,000 | 7 | 6 | 10 लाख | उष्णशीत | शीतोष्ण |
| 5. | 1,18,000 | | 1,16,000 | 5 | 4 | 3 लाख | शीतोष्ण | उष्णशीत |
| 6. | 1,16,000 | सातवीं में 52500 योजन की ऊपर व इतनी ही नीचे है। | 1,14,000 | 3 | 2 | 5कम 1ला | शीत | उष्ण |
| 7. | 1,08,000 | | 3000 | 1 | 0 | 5 | परम शीत | परम उष्ण |

सातवी नरक में काल, महाकाल, रोरव, महारोरव और अप्रतिष्ठान नाम पांच महाभयंकर दुःख वाले नरकावास है।

सात नरकों में कुल मिलाकर चौरासी लाख नरकावास हैं जिनमें असंख्यात कुम्भियाँ हैं जो वज्र रत्न की बनी हुई हैं और नाना आकार वाली हैं। इन्हीं कुम्भियों में नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं।

सात नरक के नैरयिकों के भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग हैं, उत्कृष्ट अवगाहना 500 धनुष है, पृथक-पृथक अवगाहना तालिका 2 में है। उत्तर वैक्रिय करें तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी है। स्थिति भी जघन्य 10,000 वर्ष और उत्कृष्ट 33 सागरोपम है। सभी नारकी की पृथक् पृथक् स्थिति तालिका2 में है।

| नरक | अवगाहना | जघन्य स्थिति | उत्कृष्ट स्थिति |
|---|---|---|---|
| 1. | 7.3/4 धनुष 6 अंगुल | 10,000 वर्ष | 1 सागरोपम |
| 2. | 15.1/5 धनुष 12 अंगुल | 1 सागरोपम | 3 सागरोपम |
| 3. | 31.1/4 धनुष | 3 सागरोपम | 7 सागरोपम |
| 4. | 62.1/2 धनुष | 7 सागरोपम | 10 सागरोपम |
| 5. | 125 धनुष | 10 सागरोपम | 17 सागरोपम |
| 6. | 250 धनुष | 17 सागरोपम | 22 सागरोपम |
| 7. | 500 धनुष | 22 सागरोपम | 33 सागरोपम |

नारकी में दस प्रकार की क्षेत्र वेदना होती है - अनन्त भूख, अनन्त प्यास, अनन्त शीत, अनन्त उष्ण, अनन्त परवशता, अनन्त भय, अनन्त शोक, अनन्त दाह, अनन्त खाज और अनन्त रोग । नारकी के नैरयिकों को यूं तो बुढ़ापा नहीं आता है किंतु उनका शरीर बुढ़े व्यक्ति सम जन्मजात ही जीर्ण-शीर्ण होता है।

इनकी चार लाख योनि है और पच्चीस लाख कुलकोड़ि है।

## तिर्यंच के 48 भेद

एकेन्द्रिय के 22, विकलेन्द्रिय के 6 और पंचेन्द्रिय के 20 कुल = 48.

**एकेन्द्रिय के 22 :-**

पृथ्वीकाय के 4 - सूक्ष्म, बादर। दोनों के दो अपर्याप्त, दो पर्याप्त - 4
अप्काय के 4 - सूक्ष्म, बादर। दोनों के दो अपर्याप्त, दो पर्याप्त - 4
तेउकाय के 4 - सूक्ष्म, बादर। दोनों के दो अपर्याप्त, दो पर्याप्त - 4
वायुकाय के 4 - सूक्ष्म, बादर। दोनों के दो अपर्याप्त, दो पर्याप्त - 4
वनस्पतिकाय के6 - सूक्ष्म, साधारण, प्रत्येक।
तीनों के 3 अपर्याप्त और 3 पर्याप्त - 6
22

**विकलेन्द्रिय के 6 :-**

बेइन्द्रिय के 2 - अपर्याप्त, पर्याप्त।

तेइन्द्रिय के 2 - अपर्याप्त, पर्याप्त।

चतुरिन्द्रिय के 2 - अपर्याप्त, पर्याप्त।

**पंचेन्द्रिय के 20 :-**

पंचेन्द्रिय के 5 भेद - जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प के संज्ञी (मनवाले) और असंज्ञी (बिना मनवाले) के भेद से दस भेद होते हैं। इन दस के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से 20 भेद होते हैं।

### विवेचन

पृथ्वीकाय के दो भेद सूक्ष्म और बादर।

**सूक्ष्म** : सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जिन जीवों का शरीर अत्यन्त सूक्ष्म होता है वे सूक्ष्म कहलाते हैं। असंख्यात सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर

इकट्ठे हो जाने पर भी ये छद्मस्थ को दिखाई नहीं देते हैं। परमावधिज्ञानी और केवलज्ञानी ही इन जीवों को देख सकते हैं। ये मारने से मरते नहीं, काटने से कटते नहीं, जलाने से जलते नहीं। इन जीवों से किसी को उपघात नहीं होता है और ये किसी के लिए उपघातकारक होते हैं। सम्पूर्ण लोक में ये काजल की कुप्पी में भरे काजल सम ठूंस ठूंस कर भरे हैं। इसी तरह सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेउकाय, सूक्ष्त वायुकाय और सूक्ष्म वनस्पतिकाय का स्वरुप भी समझना चाहिए।

**बादर** : बादर नामकर्म के उदय से पृथ्वीकाय के जिन जीवों को स्थूल शरीर प्राप्त होता है, वे बादर पृथ्वीकाय है। असंख्य पृथ्वीकाय जीवों के शरीर इकट्ठे होने पर ये दिखाई देते हैं। इनका छेदन-भेदन होता है। ये लोक के एक देश में रहे हुए हैं। इसी तरह बादर अप्काय, बादर तेउकाय, बादर वायुकाय के असंख्य जीवों के शरीर इकट्ठे होने पर उनका स्पर्श द्वारा ज्ञान होता है। वनस्पतिकाय के एक तथा अनेक जीवों का शरीर दिखाई देता है।

दोनो के दो-दो भेद - अपर्याप्त और पर्याप्त।

जिन जीवों में जितनी पर्याप्तियाँ पाई जाती है उन्हें यदि वे पूर्ण कर लेते हैं तो वे जीव पर्याप्त कहलाते हैं।

जो जीव अपने में पाई जाने वाली पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मर जाते हैं वे अपर्याप्त कहलाते हैं। प्रथम तीन पर्याप्ति पूर्ण किए बिना कोई भी जीव नहीं मरता है।

इस तरह पृथ्वीकाय के 4 भेद हुए।

अपेक्षा भेद से बादर पृथ्वीकाय के श्लक्षण और खर दो भेद है।

पीसे हुए आटे के समान जो मिट्टी हो वह श्लक्षण मिट्टी है, इसमें रहे हुए जीव भी श्लक्षण पृथ्वीकायिक कहलाते हैं। इसके 7 भेद हैं - 1.काली मिट्टी, 2. नीली मिट्टी, 3.लाल मिट्टी, 4. पीली मिट्टी, 5.सफेद मिट्टी, 6. पांडु मिट्टी 7.पनक मिट्टी।

पाषाण जैसी कठोर मिट्टी में रहे जीव खर पृथ्वीकायिक कहलाते हैं प्रज्ञापना सूत्र में इसके 40 नाम कहे हैं। उत्तरध्ययन सूत्र के 36वे अध्ययन में इसके 36 भेद कहे हैं - यथा, शुद्ध पृथ्वी, शर्करा (कंकड वाली), बालू, उपल (पत्थर) शिला, लवण, ऊष, लोह, ताम्बा, रांगा, शीशा, चांदी, सोना, हीरा, हरितल, हिंगलू, मैनसिल, सस्यक (पारा), अंजन, प्रवाल (मूंगा), अभ्रक, अभ्रबालुका, नान प्रकार की मणियों के 18 प्रकार जैसे - गोमेदक, रुचक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजमोचक, इन्द्रनील, चन्दन, गेरुक, हंसगर्भ, पुलक, सौगंधिक, चन्द्रप्रभ, वैडूर्य, जलकान्त, सूर्यकान्त।

पृथ्वीकाय का वर्ण पीला, स्वभाव कठोर, संठान मसूर की दाल के आकार सम। एक छोटे से कंकर में असंख्याता पृथ्वीकाय के जीव होते हैं। एक पर्याप्त की निश्रा में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

## अपकाय के चार भेद

सूक्ष्म, बादर और दोनों के अपर्याप्त एवं पर्याप्त के भेद से अप्काय के चार भेद हुए।

बादर अप्काय के 5 भेद कहे हैं - 1.शुद्धजल, 2.ओस, 3. हरतनु - गीली भूमि से निकला वह जल जो प्रातः काल तृणाग्र पर बिन्दुरुप में दिखाई पड़ता है, 4. महिका-कुहासा, 5. हिम (बर्फ)।

अप्काय का वर्ण लाल, स्वभाव ढीला, और संठान पानी के बुलबुले सम है। एक बूंद पानी में असंख्यात जीव होते हैं। एक पर्याप्त की निश्रा में असंख्यात अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

## तेउकाय के चार भेद

सूक्ष्म, बादर के अपर्याप्त, पर्याप्त के भेद से चार भेद है। बादर तेउकाय, के इंगाल, मुर्मुर, अग्नि, ज्वाला, अर्चि, उल्का, विद्युत, बड़वानल दावानल

आदि इसके अनेक भेद है।

तेउकाय का वर्ण सफेद, स्वभाव उष्ण, और संठाण सूई के भारे के आकार का है। एक चिनगारी में तेउकाय के असंख्यात जीव है। एक पर्याप्त की निश्रा में असंख्यात अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

## वायुकाय के चार भेद

सूक्ष्म, बादर के अपर्याप्त, पर्याप्त के भेद से चार भेद है। बादर वायुकाय के उक्कलिया वायु, मण्डलिया वायु, घनवायु, शुद्धवायु, गुंजावायु, संवर्तकवायु आदि अनेक भेद है। वायुकाय का वर्ण नीला है, स्वभाव चलना है, संठाण पताका के आकार सम है। एक फूंक प्रमाण वायु में असंख्यात जीव होते हैं। एक पर्याप्त की निश्रा में असंख्यात अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं। लोकाकाश के छिद्रों में यानि जहाँ भी लोकाकाश खाली है वहाँ वायुकाय के जीव रहते हैं।

वनस्पतिकाय के छह भेद

वनस्पतिकाय के दो भेद – सूक्ष्म और बादर। बादर वनस्पतिकाय के 2 भेद – प्रत्येक और साधारण। इन तीनों सूक्ष्म, प्रत्येक, और साधारण के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से दो दो भेद है, इस प्रकार वनस्पतिकाय के छह भेद हुए।

बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय के 12 भेद :

1.वृक्ष – नीम,आम,जामुन,नारियल,हरड़,बहेड़ा,अमरूद,नींबू आदि।

2.गुच्छ – पौधे रुप बैंगन, नील, टिंडोरी, केतकी, तुलसी आदि।

3.गुल्म – पुष्प जाति के पौधे, नवमालिका, गुलाब, जूही, चम्पा, मोगरा, मरवा, जाई आदि।

4. लता – वृक्षादि पर चढ़ने वाली पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चंपकलता आदि।

5. वल्ली – जमीन पर फैलने वाली बेलें, कुष्माण्डी, तुरई, तुम्बी, दाख, करेला, कींकोड़ा आदि।

6. पर्वग – पोर–गांठ वाली वनस्पति जैसे गन्ना, बरु, बेंत आदि। इनके गांठ में बीज होते हैं।

7. तृण – हरी घास, दूब, कुरातृण, कास, अर्जुनतृण, मधुतृण आदि।

8. वलय – जिसकी छाल गोली होती है। ताल, तमाल, नारियल, खजूर, सुपारी केतकी।

9. हरित – हरी भाजी – मेथी, पालक, सुवा, बथुआ, चंदलिया आदि।

10. औषधि – गेहूँ, जौ, मूंग, उड़द आदि 24 प्रकार का धान्य जो पकने पर सूख जाता है।

11. जलरुह – जल में उगने वाली वनस्पति, उत्पल, कमल, सिंघाड़ा, शेवाल आदि।

12. कुहणा – भूमि को फोड़कर पैदा होने वाली वनस्पति जैसे कुकुरमुत्ता, आय काय, भूंफोड आदि। प्रत्येक वनस्पति में प्रत्येक जीव के प्रथक् शरीर होता है।

इनमें वृक्ष के दो भेद हैं – एकास्थिक और बहुबीजक । जिसके प्रत्येक फल में एक गुठली या बीज हो वह एकस्थिक है जैसे – आम, नीम, जामुन, नारियल, हरड़े बहेड़ा आदि, इनके मूल, कंद, स्कंध, शाखा, छाल और प्रवाल (कोपल) असंख्यात जीव वाले होते हैं, पत्ते में एक जीव होते हैं और फल में एक बीज होता है।

जिन वृक्षों के फलों में अनेक बीज होते है उन्हें बहुबीजक कहते हैं, जैसे – अमरुद, नींबू, अनार, अंजीर, सीताफल, नारंगी, लीची, पीपल, गूलर, बड़, अन्नानस, बिल्व, बिजौरा आदि। इन वृक्षों के मूल कंद, स्कंध, शाखा, छाल, प्रवाल मं असंख्यात जीव होते हैं और पत्ते में मूल एक जीव होता है

अर्थात् प्रत्येक पत्ते में एक-एक जीव होता है। इनके पुष्प और फल बहुत जीव वाले हैं।

**साधारण वनस्पति :** जिन जीवों के साधारण शरीर होता है यानि एक औदारिक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं उसे साधारण वनस्पति कहते हैं। साधारण वनस्पति के जीव एक साथ उत्पन्न होते हैं, एक साथ शरीर ग्रहण करते हैं, एक साथ आहारा लेते हैं और एक साथ श्वासोच्छवास लेते हैं और एक साथ मरण को प्राप्त होते हैं।

साधारण वनस्पति के अनेक प्रकार है, जैसे - प्याज, लहसून, आलू, रतालू, पिंडालू, गाजर, मूला, शलगम, हल्दी, अदरक आदि। सूई के अग्रभाग पर आवे उतनी साधारण वनस्पति में असंख्यात प्रतर होते हैं। एक - एक प्रतर में असंख्यात श्रेणियाँ हाती है। एक-एक श्रेणी मं असंख्यात गोले होते हैं । एक-एक गोले में असंख्यात शरीर होते हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं।

वनस्पतिकाय का वर्ण काला होता है। स्वभाव और संठाण नाना प्रकार के होते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों के सिर्फ स्पर्शनेन्द्रिय होती है।

**बेइन्द्रिय के दो भेद :** अपर्याप्त और पर्याप्त। जिसके स्पर्शन इन्द्रिय और रसना इन्द्रिय ये दो इन्द्रिय हो, उसे बेइन्द्रिय कहते हैं। शंख, कोड़ी, सीप, जौंक, लट, कृमि, कोड़ा, खपरिया, चूरणिया, अलसिया, नाहरू (बाला), आदि बेइन्द्रिय के अनेक प्रकार है।

**तेइन्द्रिय के दो भेद :** अपर्याप्त और पर्याप्त । तेइन्द्रिय के स्पर्शन, रसना और घ्राण तीन इन्द्रिय होती है। जूं, लीख, कीड़ी, मकोड़ी, कुंथुवा, कानसलावा, दीमक, घुन, खटमल, धनेरिया, बीरबहूटी आदि तेइन्द्रिय जीवों के अनेक प्रकार है।

**चतुरिन्द्रिय के दो भेद** : अपर्याप्त और पर्याप्त। जिसके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु - ये चार इन्द्रियाँ हो, उसे चतुरिन्द्रिय कहते है। मक्खी, मच्छर, भ्रमर, पिस्सू, टिड्डी, पतंगा, बिच्छू, कसारी, भंवरा, पतंगिया आदि अनेक भेद है।

**तिर्यंच पंचेन्द्रिय के बीस भेद** : तिर्यंच पंचेन्द्रिय के मुख्य पांच भेद जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। इनके सन्नी- असन्नी के भेद से दस भेद होते हैं। इन दस के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से 20 भेद होते हैं। इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत ये पाँचों इन्द्रियाँ होती है।

**जलचर** : पानी में चलने वाले जलचर कहलाते हैं। इनके पाँच भेद है - मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर, सुंसुमार । इन पांच भेदों मे सभी जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का समावेश हो जाता है।

**स्थलचर** : जमीन पर चलने वाले स्थलचर कहलाते है। स्थलचर के चार भेद हैं - एगखुरा, द्विखुरा, गंडीपद, सनखपद।

एगखुरा : एक खुर वाले। जैसे घोड़ा, गधा आदि।

द्विखुरा : दो खुर वाले। जैसे गाय, भैंस, बकरी, ऊँट।

गंडीपदा : सुनार की एरण के समान गोल पैर वाले। जैसे हाथी, गैंडा।

सनखपदा : नख सहित पंजे वाले। जैसे सिंह, चीता, बिल्ली।

**खेचर** : आकाश में उड़ने वाले पक्षी। इनके चार भेद चर्मपक्षी, रोमपक्षी, समुद्गपक्षी, वितत पक्षी।

चर्मपक्षी : चर्म के पंख वाले। जैसे चमगादड़, भारंड पक्षी, समुद्र वायस आदि।

रोमपक्षी : रुओं के पंखवाले। जैसे चिडियाँ, कबूतर, मोर, तोता, मैना आदि।

समुद्गपक्षी : जिनके पंख हमेशा डिब्बे की तरह बंद रहते है।

वितत पक्षी : जिनके पंख हमेशा खुले-फैले हुए रहते है।

समुग्ग पक्षी और वितत पक्षी ढाई द्वीप में नही होते। ये ढाई द्वीप के बाहर होते है।

**उरपरिसर्प :** छाती से चलने वाली सर्प जाति। उरपरिसर्प चार प्रकार के होते है – अहि, अजगर, असालिया, महोरग।

अहिसर्प के दो भेद : फण करने वाले जैसे आशीविष, दृष्टिविष, उग्रविष, भोग विष, त्वचा विष, लार विष, उच्छवास विष, निःश्वास विष, कृष्ण सर्प आदि और फण नही करने वाले जैसे – दिव्वागा, गोणसा, चीतल आदि

अजगर : जो मनुष्य आदि को निगल जाता है।

असालिया : एक ही प्रकार का होता है। यह चक्रवर्ती आदि की राजधानी अथवा नगर आदि की खाल (गटर) के नीचे पैदा होता है। अन्तर्मुहूर्त्त में बारह योजन लम्बा हो जाता है। चक्रवर्ती आदि की सेना तथा गांव नगर आदि का नाश कर देता है। यह असंज्ञी होता है। इसकी आयु अन्तर्मुहूर्त्त की होती है।

महोरग : महोरग जाति का सर्प ढाई द्वीप के बाहर होता है। यह पृथक्त्व अंगुल से लेकर एक हजार योजन प्रमाण होता है। यह सर्प जल और स्थल दोनो जगह रहता है।

**भुजपरिसर्प :** भुजा से चलने वाले । जैसे कोल, नेवला, चूहा, छिपकली, गिलहरी, गोह आदि।

इस प्रकार एकेन्द्रिय के 22, तीन विकलेन्द्रिय के 6, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 20, कुल मिलाकर तिर्यंच के अड़तालीस भेद हुए।

## मनुष्य के 303 भेद

15 कर्मभूमिज, 30 अकर्मभूमिज आर 56 अन्तर्द्वीपज ये मनुष्य के 101 भेद हुए अपर्याप्त एवं पर्याप्त के भेद से 202 भेद हुए और इन्ही 101 गर्भज मनुष्यों के चौदह अशुचि स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्छिम मनुष्य के 101 अपर्याप्त, कुल मिलाकर मनुष्य के 303 भेद हुए।

## विवेचन

**मनुष्य के मुख्य 2 भेद :** गर्भज और सम्मूर्छिम । गर्भज के तीन भेद कर्म भूमि, अकर्म भूमि, अन्तर्द्वीपज।

**कर्म भूमि :** जहाँ असि, कसि, कृषि, शिल्प और वाणिज्य के द्वारा आजीविका करते हैं। जहाँ राजा रानी होते है उनकी आज्ञा चलती है, विवाह, शादी, लेनदेन होता है। जहाँ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, रुप चार तीर्थ, तीर्थंकर, गणधर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, आचार्य, उपाध्याय, आदि होते हैं, मनुष्य मोक्ष के लिए क्रिया करते हैं। इस प्रकार की कर्म प्रधान भूमि कर्म भूमि कहलाती है। यहाँ कर्म करने से ही पेट भरता है। जहाँ खेत, सेत, अभयखेत है अर्थात् जहाँ बोने से धान निपजता है उसे खेत कहते हैं। जहाँ बोने और सींचने से धान निपजता है उसे सेत कहते हैं। जहाँ बिना बोये, बिना सींचने से धान निपजता है उसे अभय खेत कहते हैं।

कर्म भूमियाँ 15 हैं - पाँच भरत, पाँच ऐरावत, पाँच महाविदेह। एक भरत, एक ऐरावत एक महाविदेह जम्बूद्वीप में हैं। दो भरत, दो ऐरावत, दो महाविदेह धातकी खण्ड में हैं। दो भरत, दो ऐरावत, दो महाविदेह पुष्करार्ध में हैं। इन पन्द्र क्षेत्रों में पन्द्रह कर्मभूमियाँ है।

**अकर्म भूमि :** जहाँ मनुष्य असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य द्वारा आजीविका नहीं करते हैं। खेत, सेत, अभयखेत, राजा रानी, विवाह, शादी, लेन, देन कुछ नही होता है। जहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, गणधर आचार्य, उपाध्याय, साधु-साध्वी, चार तीर्थ आदि कुछ नहीं है। दस प्रकार के कल्पवृक्षों से मनुष्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं उसे अकर्म भूमि कहते हैं। अकर्म भूमि में पुत्र-पुत्री जोड़े से पैदा होते हैं इसलिए यहाँ के मनुष्य युगलिक कहलाते हैं।

ये पुत्र पुत्री बड़े होकर पति-पत्नी के रुप में रहते हैं और जीवन के पिछले भाग में एक युगल को जन्म देते हैं। दोनों करीब करीब एक साथ ही

मरते हैं और मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

अकर्म भूमि के 30 क्षेत्र है - 5 देवकुरु, 5 उत्तर कुरु, 5 हरविर्ष, 5 रम्यक्वर्ष, 5 हेमवत, 5 हैरण्यवत। इन सभी पाँच पाँच क्षेत्रों में से एक एक क्षेत्र जम्बुद्वीप में हैं, दो-दो क्षेत्र धातकीखण्ड तथा दो दो ही पुष्करार्ध में हैं। इन तीस क्षेत्रों में अकर्म भूमि के मनुष्य रहते हैं।

**छप्पन अन्तर्द्वीप** : जम्बूद्वीप क भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चुल्ल हिमवंत पर्वत है और जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला शिखरी पर्वत है। इन पर्वतों में से प्रत्येक पर्वत के पूर्व पश्चिम की ओर लवण समुद्र में चारों विदिशओं में सात सात अन्तर्द्वीप है जो दाढ़ाओं के आकार वाले हैं। इस प्रकार एक पर्वत के दोनों और अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं और दोनों पर्वतों को मिलाकर छप्पन अन्तरद्वीप है।

इन अन्तरद्वीपों में युगलिक मनुष्य रहते हैं । दस जाति के कल्पवृक्षों से इनकी आवश्यताएँ पूर्ण होती है। ये एकान्त मिथ्यादृष्टि होते हैं फिर भी अल्पकषायी होने से मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

जम्बूद्वीप की जगती से 300 योजन दूर जाने पर तीन सौ योजन लम्बा चौड़ा पहला द्वीप आता है। इस पहले द्वीप से चार सौ योजन दूर जाने पर चार सौ योजन लम्बा चौड़ा दूसरा द्वीप आता है। दूसरे द्वीप से पाँच सौ योजन दूर जाने पर पाँच सौ योजन लम्बा चौड़ा तीसरा द्वीप आता है। तीसरे द्वीप से छह सौ योजन दूर जाने पर छह सौ योजन लम्बा चौड़ा चौथा द्वीप आता है। चौथे द्वीप से सात सौ योजन दूर जाने पर सात सौ योजन लम्बा चौड़ा पाँचवां द्वीप आता है। पाँचवे द्वीप से आठ सौ योजन दूर जाने पर आठ सौ योजन लम्बा चौड़ा छठा द्वीप आता है। छठे द्वीप से नौ सौ योजन दूर जाने पर नौ सौ योजन लम्बा चौड़ा सांतवा द्वीप आता है। एक द्वीप से दूसरा द्वीप जितने योजन दूर है जम्बूद्वीप की जगती से भी वह उतने ही योजन दूर है। जैसे पाँचवा द्वीप चौथे द्वीप से सात सौ योजन दूरी पर है और जम्बूद्वीप की जगती से भी यह पांचवा

द्वीप सात सौ योजन दूर है। इस प्रकार चुल्लु हेमवंत पर्वत के पूर्व और पश्चिम एक-एक विदिशा में जम्बूद्वीप की जगती से चौरासी सौ योजन में सात-सात अन्तरद्वीपा हैं और चारों विदिशाओं में अठाईस अन्तरद्वीप हैं। अठाईस अन्तरद्वीपों के और उनमें रहने वाले मनुष्यों के नाम नीचे लिखे अनुसार है-

| ईशान कोण | आग्नेय कोण | नैर्ऋत्य कोण | वायव्य कोण |
|---|---|---|---|
| 1. एकोरुक | 2. आभासिक | 3. वैषणिक | 4. नांगोलिक |
| 5. हयकर्ण | 6. गजकर्ण | 7. गोकर्ण | 8. शष्कुली कर्ण |
| 9. आदर्शमुख | 10. मेंढमुख | 11. अयोमुख | 12. गोमुख |
| 13. अश्वमुख | 14. हस्तिमुख | 15. सिंहमुख | 16.व्याघ्रमुख |
| 17. अश्वकर्ण | 18.हरिकर्ण | 19. अकर्ण | 20. कर्णप्रावरण |
| 21. उल्कामुख | 22. मेघमुख | 23. विद्युन्मुख | 24. विद्यद्दंत |
| 25. धनदंत | 26. लष्टदंत | 27. गूढदंत | 28. शुद्धदंत |

पन्द्रह कर्म भूमि, तीस अकर्म भूमि, छप्पन अन्तर द्वीप - ये मनुष्य के 101 भेद हुए। अपर्याप्त पर्याप्त के भेद से 202 भेद हुए।

पन्द्रह कर्म भूमि, तीस अकर्म भूमि, छप्पन अन्तर द्वीप - इन 101 गर्भज मनुष्यों के चौदह अशुचि स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्छिम मनुष्य भी 101 प्रकार के होते है। चौदह अशुचि स्थान ये हैं -

1. उच्चारेसुवा - बड़ीनीती (विष्टा-मल) में।

2. पासवणेसु वा - लघुनीती (पेशाब) में।

3. खेलेसु वा - कफ-बलगम में।

4. सिंघाणेसु वा - नाक के मेल में

5. वंतेसु वा - वमन में

6. पित्तेसु वा – पित्त में

7. पुएसु वा – राध में।

8. सोणिएसु वा – रुधिर में।

9. सुक्केसु वा – शुक्र–वीर्य में।

10. सुक्क पुग्गल परिसाडेसु वे – सुखे हुए वीर्य पुद्गलों के वापिस गीले होने पर।

11. विगय जीव कलेवरेसु वा – मनुष्य के मृत कलेवर में।

12. इत्थी पुरिस संजोएसुवा – स्त्री पुरुष के संयोग में।

13. णगर णिद्धमणेसु वा – नगर की खाल–नाली गटर में।

14. सव्वेसु असुइट्ठाणेसु वा – सभी अशुचि स्थानों में–

यानी उपरोक्त तेरह स्थानों में से दो तीन चार आदि स्थान इकट्ठे होने पर उनमें जो संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं – सभी अशुचि स्थानों से इनका अभिप्राय है। यह सम्मूर्छिम मनुष्य उपरोक्त चौदह स्थानों में अन्तर्मुहूर्त में उत्पन्न होते हैं। इनकी अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग परिणाम होती है। आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। ये असंज्ञी मिथ्यादृष्टि होते हैं एवं अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं।

## छह आरा

बीस कोड़ा–कोड़ी सागरोपम का एक काल चक्र होता है।

(सागरोपम – उत्सेधांगुल से चार कोश लम्बा, चार कोश चौड़ा और चार कोश का गहरा एक गोलाकार कूप है। उसमें देवकुरु उत्तर कुरुक्षेत्र के सात दिन के उत्पन्न युगलिया बालक के महीन केश असंख्यात खण्ड करके इस तरह ठूँस ठूँस करके भरे जाये कि गंगा, सिन्धु नदी उन पर से बहे तो एक बूंद पानी भी उनमें न जा सके, महादावानल से केश का एक भी खंड भस्म न हो, चक्रवर्ती की सेना उन पर से गुजरे तो दबे नहीं, पुष्करावर्त्त मेघ बरसे तो एक भी

खंड गीला न हो तथा संवर्तक नामक अत्यंत तेज वायु चले तो एक भी खंड न उड़े। ऐसे ठसाठस भरे हुए कूप में से एक एक खंड सौ - सौ वर्षों से निकाला जाय। इस तरह सौ-सौ वर्षों में एक एक खंड निकालते हुए जितने काल में सारा कूप खाली हो जाता है उतने काल को एक पल्योपम कहते हैं। ऐसे दस कोड़ा कोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है।)

कालचक्र के दो विभाग हैं-उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। दोनों दस-दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम के होते हैं एवं प्रत्येक में छह आरों के नाम सुषमसुषमा, सुषमा, सुषम दुषमा, दुषमा सुषमा, दुषमा, दुषमदुषमा।

**सुषमसुषमा**- यह आरा 4 कोड़ा कोड़ी सागरोपम का होता है। एक वर्षा बरसने से दस हजार वर्ष तक पृथ्वी का स्वाद मिश्री से भी अधिक मीठा होता है। स्पर्श मक्खन जैसा होता है। मनुष्य की अवगाहना लगते आरे जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की उत्कृष्ट तीन गाऊ की होती है। उतरते आरे उत्कृष्ट दो गाऊकी। स्थिति लगते आरे जघन्य तीन पल्योपम से कुछ ऊनी उत्कृष्ट दो पल्योपम की होती है। लगते आरे मनुष्य के शरीर में 256 पसलियाँ होती है और उतरते आरे 128 होती है। इस आरे के मनुष्य युगल (लड़के लड़की के जोड़े) रूप उत्पन्न होते हैं इसलिये युगलिया कहलाते हैं। दस जाति के कल्प वृक्षों से युगलियों को सभी प्रकार के भोग उपभोग की सामग्री प्राप्त होती है। (दस कल्पवृक्ष ये हैं-(1) **मत्तंगा** - शरीर के लिये पुष्टिकर मधुकर फलादि देने वाले। (2) **भिंगा**-बर्तन देने वाले। (3) **तुडियंगा**-वाद्यत्र देने वाले। (4) **दीवंगा**-दीपक देने वाले। (5) **जोइयंगा**- सूर्यचन्द्र जैसा प्रकाश देने वाले। (6) **चित्तंगा**-विविध प्रकार के सुन्दर सुगन्धित फूल देने वाले। (7)**चित्तरसा**-मनोज्ञ षट्रस भोजन देने वाले। (8) **मणियंगा**-आभूषण देने वाले। (9) **गेहागारा**-आवास-मकान के आकार वाले जिनमें सुख पूर्वक युगलिया रह सकतें हैं। (10) **अणयण**-सुन्दर सुखद महीन वस्त्र का काम देने वाले)

छह माह की आयु शेष रहने पर युगलियों के एक युगल जन्मता है। उनपचास दिन तक माता पिता पालन-पोषण करते हैं। इसके पश्चात् युगल पुत्र पुत्री युवा हो जाते हैं और माता पिता से अलग स्वतंत्र रूप से पति-पत्नि की तरह रहते हैं। छह माह समाप्त होने पर माता-पिता को एक को छींक और एक को उबासी आती है और दोनों मर जाते हैं। मर कर देवगति में उत्पन्न होते हैं।

**सुषमा**- यह आरा तीन कोड़ा कोडी सागरोपम का होता है इस आरे में एक वर्षा बरसने से एक हजार वर्ष तक पृथ्वी में सरसता रहती हैं पृथ्वी का स्वाद चीनी से भी अधिक मीठा होता है। स्पर्श रेशम के गुच्छे जैसा होता है। इस आरे के प्रारंभ में यानी लगते आरे मनुष्य की अवगाहना दो गाऊ की और उतरते आरे एक गाऊ की होती है। स्थिति लगते आरे दो पल्योपम की और उतरते आरे एक पल्योपम की होती है। लगते आरे मनुष्य के शरीर में 128 पसलियाँ होती हैं और उतरते आरे 64 पसलियाँ होती हैं। दो दिन के अन्तर से आहार की इच्छा होती है। दस जाति के कल्पवृक्षों से इस आरे के युगलिया मनुष्यों को सभी प्रकार की भोग उपभोग की सामग्री प्राप्त होती है। छह माह की आयु शेष रहने पर युगलियों से एक युगल जन्मता है चौसठ दिन तक माता पिता युगल बालक बालिका का पालन पोषण करते हैं। तत्पश्चात् वे जवान हो जाते हैं और माता पिता से स्वतंत्र होकर पति पत्नि की तरह रहते हैं। छह माह के बाद माता पिता में से एक को छींक और एक को उबासी आती है और दोनों मर जाते हैं। मर कर देवगति में उत्पन्न होते हैं।

**सुषमा दुषमा**- यह आरा दो कोड़ा कोड़ी सागरोपम का होता है। पहले दो आरों में सुख था। इस आरे में सुख तो अधिक है पर थोड़ा दुःख भी है। इस आरे में एक वर्षा बरसने से सौ वर्ष तक पृथ्वी सरस रहती है। पृथ्वी का स्वाद गुड़ से अधिक मीठा और स्पर्श आक की रुई जैसा होता है। लगते आरे मनुष्य की अवगाहना एक गाऊ की और उतरते आरे पाँच सौ धनुष की होती है। स्थिति लगते आरे एक पल्योपम की और उतरते आरे एक करोड़ पूर्व की होती है। लगते ओर मनुष्य के शरीर में 64 पसलियाँ होती हैं और उतरते आरे

32 पसलियाँ होती है। एक दिन कि अन्तर से आहार की इच्छा होती है। दस जाति के कल्पवृक्षों से इस आरे के युगलिया मनुष्यों की सभी प्रकार की भोगोपभोग सामग्री प्राप्त होती है।

छह माह का आयु शेष रहने पर इस आरे के युगलियों के बालक बालिका का एक युगल जन्मता है। माता पिता ऊनासी दिन तक बालक बालिका का पोषण करते हैं। तत्पश्चात् युगल बालक बालिका जवान हो जाते हैं और माता पिता से स्वतन्त्र होकर पति पत्नी की तरह रहते हैं। मृत्यु के समय माता-पिता को एक को छींक और एक को उबासी आती है। मर कर देव गति में उत्पन्न होते हैं। इस आरे के तीन भागों में से पहले दो भाग में ऊपर लिखे अनुसार युगलिया धर्म जारी रहा और युगलिये मर कर देवलोक में जाते थे। अवसर्पिणी काल के प्रभाव से प्रथम आरे से ही वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श संहनन, संठाण(संस्थान), अवगाहना आयु, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम में निरन्तर ह्रास हो रहा था। तीसरे आरे के दो भागों तक भी यह ह्रास उसी क्रम मे जारी रहा किन्तु तीसरे भाग में यह ह्रास अनियमित रुप से होने लगा। युगलियों में जो सरलता, भद्रता, निर्लोभता आदि गुण थे उनमें भी काफी अन्तर आ गया। कल्पवृक्षों से भी अब युगलियों को आवश्यकतानुसार फल प्राप्त नहीं होने लगे। उन्हें आवश्यकता ज्यादा होती थी पर फल कम मिलते थे। फलस्वरुप युगलियों में कषाय बढ़ने लगी और वे परस्पर झगड़ा करने लगे। इस आरे में तीसरे भाग के अन्तिम पल्योपम के आठवें भाग के शेष रहने पर पन्द्रह कुलकर हुए। पहले पाँच कुलकरों के समय हकार का दण्ड था, बीच के पाँच कुलकरों के समय हकार और मकार का दण्ड था और अन्तिम पाँच कुलकरों के समय हकार, मकार और धिक्कार का दण्ड था। तीसरे आरे की समाप्ति के चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष और और साढ़े आठ माह शेष रहने पर प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम नाभि राजा और माता का नाम मरुदेवी था। ये पन्द्रहवें कुलकर थे। भगवान् ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल में प्रथम राजा और प्रथम तीर्थंकर थे। चौरासी लाख पूर्व

की इनकी आयु थी। भगवान ऋषभदेव बीस लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे, त्रेसठ लाख पूर्व तक राज्य किया और एक लाख पूर्व तक साधु अवस्था में रहे। भगवान ऋषभदेव के दो स्त्रियाँ थी सुनन्दा और सुमंगला। सुनन्दा से एक युगल बाहुबली और सुन्दरी ने जन्म लिया। सुमंगला ने पचास युगल को जन्म दिया पहला युगल भरत और ब्राह्मी का था। शेष 49 युगल रुप में 98 पुत्रों ने जन्म लिया। इस तरह भगवान ऋषभदेव के दो पुत्री और सौ पुत्र हुए।

अपने राज्य काल में युगलिया धर्म को लुप्त होते देख कर और कल्पवृक्षों को फल न देते देखकर ऋषभदेव ने सोचा कि अब कल्पवृक्षों के भरोसे रहना उचित नहीं है। मनुष्यों को अन्न पैदा करना, पकाना आदि जानना चाहिये। यह विचार कर भगवान ऋषभेदव ने लोगों को कर्मभूमि योग्य असि, मसी, कृषि, और वाणिज्य की शिक्षा दी। कुंभकार, लुहार, चित्रकार, जुलाहा, नापित आदि के सौ प्रकार के शिल्प सिखाये। पुरुषों की 72 कला और स्त्रियों को 64 कला की शिक्षा दी।

त्रेसठ लाख पूर्व के अपने शासन काल में प्रजा को सभी आवश्यक बाते सिखा कर, सौ ही पुत्रों को अलग-अलग राज्य देकर बाद में भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षा धारण की। उस समय लोगों को, साधु को आहार देने की विधि का ज्ञान न था। अतः एक वर्ष तक भगवान ऋषभदेव निराहार रहे। वर्ष के उपरांत में श्रेयाँस कुमार के यहाँ साधु योग्य निरवद्य गन्ने (सांठे) का रस ग्रहण कर पारणा किया। तभी लोगों को, साधु को आहार देने की बात मालूम हुई। एक हजार वर्ष तक भगवान ऋषभदेव छद्मस्थ रहे। पुरिमताल नगर के उद्यान में भगवान् ऋषभदेव को चार घाती कर्मों के क्षय हो जाने पर, केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक भगवान् ऋषभदेव ने भव्य प्राणियों के उद्धार के लिये उपदेश दिया। एक लाख पूर्व तक दीक्षा पर्याय पाल कर भगवान् ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर दस हजार साधुओं के साथ मोक्ष पधारे। उस समय तीसरा आरा समाप्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष थे।

**दुषमा सुषमा** – यह आरा बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम का होता है। इस आरे में सुख तो थोड़ा और दुःख अधिक होता है। एक वर्षा बरसने से दस वर्ष तक पृथ्वी में सरसता रहती है। भूमि का स्वाद चाँवल के मैदे जैसा होता है और स्पर्श रुई जैसा होता है। मनुष्य की अवगाहना लगते ओर पाँच सौ धनुष और उतरते आरे सात हाथ की होती है। स्थिति लगते आरे करोड़ पूर्व की और उतरते आरे सौ वर्ष झाझेरी होती है। लगते आरे मनुष्य के शरीर में 32 पसलियाँ होती है और उतरते आरे सोलह पसलियाँ होती है। मनुष्य को प्रतिदिन आहार की इच्छा होती है। रस में मधुरता होती है और पृथ्वी में सरसता होती है। मनुष्य में स्नेह होता है। राजा न्याय करता है और देवता में साँच होता है।

इस आरे में ग्यारह चक्रवर्ती, तेईस तीर्थंकर, नौ वासुदेव, नौ बलदेव, और नौ प्रतिवासुदेव हुए। प्रथम चक्रवर्ती भरत तीसरे आरे में हुए थे। इस आरे के समाप्त होने में 75 वर्ष 8.1/2 माह बाकी रहने पर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला देवी था। भगवान महावीर स्वामी की आयु 72 वर्ष की थी। तीस वर्ष तक गृहस्थ में रहे और 42 वर्ष साधु पर्याय में रहे। चौथे आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ माह बाकी थे तब भगवान महावीर स्वामी मोक्ष पधारे।

**दुषमा** : यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। इस आरे में पृथ्वी का स्वाद कहीं कहीं नमक जैसा खारा होता है। स्पर्श कठोर होता है। कंटकादि विशेष होते हैं। भूमि में सरसता थोड़ी होती है और रस में मधुरता थोड़ी होती है। मनुष्यों में स्नेह कम होता है। राजाओं में न्यायी कम होते है। बरसात बरसती है तो अन्नादि पैदा होते है अन्यथा नहीं। खेत की एक पाली पर पानी बरसता है तो दूसरी पाली पर नहीं बरसता। वर्षा से गाय का एक सींग भीगता है तो दूसरा सूखा ही रहता है। मनुष्य की अवगाहना लगते आरे सात हाथ की और उतरते आरे एक हाथ की होती है। स्थिति लगते आरे सौ वर्ष झाझेरी और और उतरते आरे बीस वर्ष की होती है। लगते आरे मनुष्य के शरीर में 16

पसलियाँ होती हैं और उतरते आरे आठ पसलियाँ होती हैं। आहार की इच्छा अनियमित होती है। भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् चौसठ वर्ष तक केवलज्ञान रहा । श्री जम्बूस्वामी इस अवसर्पिणी में आखिरी मोक्ष जाने वाले थे। जम्बू स्वामी के मोक्ष जाने पर दस बोलों का विच्छेद हो गया –

1. केवलज्ञान
2. मनःपर्यय ज्ञान
3. परमावधि ज्ञान
4. परिहार विशुद्धि चारित्र
5. सूक्ष्मसंपराय चारित्र
6. यथाख्यात चारित्र
7. पुलाक लब्धि
8. आहारक शरीर
9. क्षपक (क्षायिक) और उपशम श्रेणी
10. जिनकल्प

आचार्यों ने पाँचवें आरे के तीस बोल बताये हैं–

1. नगर गाँव जैसे होंगे।
2. गाँव श्मशान जैसे होंगे।
3. कुटुम्ब परिवार वैरी सरीखा होगा।
4. राजा यम जैसे होंगे।
5. प्रधान आदि राज्य कर्मचारी रिश्वतखोर होंगे।
6. ऊँचे कुल की बहू बेटी लज्जाहीन होंगी।

7. कोई ऊँचे घराने की बहू बेटी वेश्या जैसी होंगी।

8. पुत्र पुत्री स्वच्छन्द होंगे।

9. शिष्य शिष्या गुरु के प्रत्यनीक (शत्रु) होंगे।

10. दुर्जन लोग सुखी होंगे - उनके घर में बहुत धन होगा।

11. सज्जन लोग दुखी होंगे - उनके घर में धन कम होगा।

12. स्वचक्री परचक्री का भय होगा।

13. दुर्भिक्ष-अकाल बहुत पड़ेंगे, दुष्ट सर्पादिक बहुत होंगे।

14. ब्राह्मण धन के लोभी होंगे।

15. साधु गुरुकुल को छोड़कर अन्य स्थानों में जावेंगे।

16. धर्म की मन्दता होगी, मन कषायों से कलुषित रहेगा।

17. सम्यगदृष्टि थोड़े होंगे।

18. मिथ्यादृष्टि बहुत होंगे।

19. मनुष्य को देव दर्शन दुर्लभ होंगे।

20. विद्या, मंत्र का प्रभाव कम होगा।

21. गोरस-दूध दही घी तथा तैल गुड़ शक्कर में रस कम होगा।

22. साधुओं के मास कल्प योग्य क्षेत्र कम होंगे।

23. बल, धन, आयुष्य थोड़ा होगा।

24. साधु की बारह पड़िमा और श्रावक की ग्यारह पड़िमा का विच्छेद होगा।

25. गुर अपने शिष्यों को कम पढ़ावेंगे।

26. शिष्य शिष्या कलह करने वाले होंगे।

27. श्रमण-साधु कम होंगे, मस्तक मुंडाने वाले वेषधारी अधिक होंगे।

28. आचार्यों के अलग अलग गच्छ होंगे और उनकी समाचारी अलग अलग होगी।

29. म्लेच्छ राजा ऊँचे होंगे।

30. हिन्दू अथवा कुलीन राजा नीचे होंगे।

इस आरे में धीरे-धीरे रत्न जवाहरात सोना चाँदी आदि कम होते जायेंगे। चमड़े के सिक्के होंगे। एक उपवास करने वाला मासखमण की तपस्या करने वाले की तरह तपस्वी कहलायेगा। श्रुतज्ञान की धीरे-धीरे हानि होती जायेगी। अन्त में दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन रहेंगे। इस पाँचवे आरे के अन्त में चार जीव एक भव कर मोक्ष जाने वाले होंगे - दुपसह नामक आचार्य, फाल्गुणी नाम वाली आर्या, नागल नामक श्रावक और नागश्री नाम वाली श्राविका। पाँचवां आरा समाप्त होता जानकर ये चारों आलोयणा (आलोचना) प्रतिक्रमण कर निःशल्य होकर संथारा करेंगे और मर कर पहले देवलोक में उत्पन्न होंगे। पाँचवे आरे के अन्तिम दिन के प्रथम पहर में जिनधर्म का विच्छेद होगा, दूसरे पहर में अन्यधर्मों का विच्छेद होगा, तीसरे पहर में राजधर्म का विच्छेद होगा और चौथे पहर में अग्नि का विच्छेद होगा।

**दुषमा दुषमा** : पाँचवें आरे के समाप्त होने पर अत्यन्त दुःखमय दुषम दुषमा नाम का इक्कीस हजार वर्ष का छठा आरा प्रारम्भ होगा। इसके आरम्भ होने के साथ संवर्तक नामक बड़ी तेज भयंकर आँधी चलेगी। सर्वत्र मनुष्य पशुओं में हाहाकार मच जायेगा। चारों दिशाएँ धूम और धूलि से अंधकारमय हो जावेंगी। सूर्य अत्याधिक प्रचंड तापमय होगा और चन्द्रमा अत्याधिक शीतल होकर शीत उत्पन्न करेगा। अरसमेघ, विरसमेघ, क्षारमेघ, खात्रमेघ, खट्टमेघ, अग्निमेघ, विद्युतमेघ, विषमेघ बरसेंगे। **अरसमेघ**-मनोज्ञ रस से शून्य पानी बरसाने वाले। **क्षारमेघ** - सज्जी आदि क्षार के समान पानी बरसाने वाले। **खात्र मेघ** - गोबर के समाल जल बरसाने वाले। **खट्टमेघ** - खट्टा पानी बरसाने वाले । **अग्निमेघ** - अग्नि की तरह दाहकारी जल बरसाने वाले। **विद्युतमेघ** - बिजली गिरने वाले मेघ। **विषमेघ** - विषयुक्त जहरीला

पानी बरसाने वाले – जिनके पानी से प्राणी मर जाते हैं।

प्रलयकालीन प्रचण्ड आँधी और वर्षा से ग्राम, नगर, जनपद, कोट, किले, कुए बावड़ी, नदी नाले, महल, मालिया, पर्वत, उद्यान आदि नष्ट हो जायेंगे। वृक्ष, नवण, तृण, औषधि आदि वनस्पति खत्म हो जायेंगी और बहुत से मनुष्य पशुपक्षी मर जावेंगे। पृथ्वी ढोलके तले की तरह सपाट हो जायेगी। वैताढ्यपर्वत, गंगा, सिन्धु नदी, ऋषभकूट और लवणसमुद्र की खाड़ी ये पाँच स्थान रहेंगे। शेष सभी नष्ट हो जायेंगे। गंगा, सिन्धु नदी का पाट गाड़ी के गड़ार (चोला) जितना चौड़ा रह जायेगा और उनमें धुरी प्रमाण गहरा पानी रहेगा। इन दोनों नदियों में पानी थोड़ा होगा और मच्छ कच्छप अधिक होंगे। जो भी मनुष्य पशु पक्षी जीवित रहेंगे वे वैताढ्य पर्वत के 72 बिलों में रहेंगे। त्रेसठ बिलों में मनुष्य रहेंगे, छह बिलों में पशु पहेंगे और तीन बिलों में पक्षी रहेंगे। दिन के समय सख्त गर्मी पड़ेगी और रात्रि में सख्त सर्दी पड़ेगी। इस सख्त गर्मी और सर्दी को मनुष्य पशु–पक्षी सहन नहीं कर सकेंगे अतः दिन और रात्रि के समय वे बिलों में ही रहेंगे। प्रातः और संध्या समय वे बिलों में से बाहर निकल कर मच्छ कच्छपादि पकड कर रेत में गाड़ देंगे जो दिन में सूर्य की गर्मी से और रात्रि में चन्द्रमा की शीत(ठंड) से पक जायेंगे। सुबह गाड़े हुए मच्छ कच्छपादि को सन्ध्या समय निकाल कर खायेंगे। हड्डियां वगैरह पशु पक्षी खावेंगे।

छठे आरे के मनुष्य की अवगाहना लगते आरे एक हाथ की और उतरते आरे मुंड हाथ की होगी। स्थिति लगते आरे बीस वर्ष की और उतरते आरे सोलह वर्ष की होगी। लगते आरे मनुष्य के शरीर में आठ पसलियाँ और उतरते समय चार पसलियाँ होंगी। मनुष्य का शरीर कुरुप बेडौल और दुर्गन्धयुक्त होगा। उनका स्वर कर्कश होगा। वे निर्लज्ज और मर्यादा रहित होंगे तथा कूड़ कपट वैर युक्त होंगे। वे काले, कुरुप, कठोर, दाढ़ी मूँछ नख केश बढ़ जाने से भयानक घड़े की तरह विकराल मस्तक वाले, टेढ़ी नाक और विषम नेत्र वाले, रोग और जरा से आक्रांत दीन दुर्बल तथा तेज और उत्साह से शून्य होंगे। उनमें मोह और कषाय की प्रबलता होगी। प्रायः सम्यक्त्व तथा धर्म से

भ्रष्ट होंगे। छः वर्ष की स्त्री गर्भ धारण करेगी और बारह वर्ष की अवस्था में दादी हो जायेगी। कुत्तिया की तरह एक साथ बहुत सन्तान को जन्म देगी। इनका जीवन अत्यन्त दुःखमय होगा। छठे आरे के मनुष्य मर कर प्रायः नरक तिर्यंच में उत्पन्न होंगे।

ये अवसर्पिणी काल के छह आरे हुए। इसी तरह उत्सर्पिणी काल के भी छह आरे होते हैं जो दस कोड़ा कोड़ी सागरोपम के हैं। अवसर्पिणी काल में वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श, संहनन, संठाण, अवगाहना, आयु, गुरु, लघु (बादर द्रव्य स्कन्ध), अगुरु लघु (सूक्ष्म द्रव्य स्कन्ध), उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम की पर्यायें क्रमशः ह्रास होती हुई हीन, हीनतर और हीनतम हो जाती है और उत्सर्पिणी काल में इनमें क्रमशः वृद्धि होकर उच्च, उच्चतर और उच्चतम हो जाती है। उत्सर्पिणी काल के छः आरे – दुषम दुषमा, दुषमा, दुषमा सुषमा, सुषमा दुषमा, सुषमा और सुषम सुषमा हैं। उत्सर्पिणी काल का पहला आरा अवसर्पिणी काल के छठे आरे जैसा है। इसी प्रकार उत्सर्पिणी काल का दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, और छठा आरा क्रमशः अवसर्पिणी के पाँचवे, चौथे, तीसरे, दूसरे और पहले आरे के समान हैं। इतनी विशेषता है कि उत्सर्पिणी का पहला आरा समाप्त होने पर दूसरे दुषमा के प्रारम्भ में सात सात दिन तक पुष्कर संवर्तक मेघ, क्षीर मेघ, घृत मेघ, अमृत मेघ और रस मेघ बरसेंगे जिससे पहले आरे के अशुभ भाव, रुक्षता, उष्णता आदि नष्ट होकर शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श की उत्पत्ति होगी, पृथ्वी में सरसता उत्पन्न होगी, वृक्ष, गुच्छा, गुल्म, लता आदि वनस्पतियां अंकुरित होंगी, उनमें पाँच प्रकार का रस उत्पन्न होगा तथा पत्र प्रवाल पुष्प फल लगने लगेंगे। पृथ्वी के सरस हरी भरी हो जाने पर बिलवासी बिलों से बाहर निकलेंगे और सुन्दर सुखद वातावरण देखकर अत्यन्त प्रसन्न होंगे। वनस्पति से अपना निर्वाह होता देख वे मांसाहार का त्याग करेंगे। सभी मिलकर मांसाहार न करने की मर्यादा करेंगे और मांसाहार करने वाले की छाया में भी न बैठना ऐसा निश्यच करेंगे।

उत्सर्पिणी के चौथे आरे के अवसर्पिणी के तीसरे के समान तीन भाग होंगे। इस आरे के प्रथम भाग अवसर्पिणी के तीसरे आरे के तीसरे भाग के समान होगा। इस प्रथम भाग मे चौथे आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बीतने पर चौबीसवें तीर्थंकर का जन्म होगा। इनका आयुष्य चौरासी लाख पूर्व का होगा। भगवान ऋषभदेव की तरह ये शिल्पकला आदि की शिक्षा नहीं देंगे क्योंकि पहले से चली आ रही होंगी। इनके मोक्ष जाने के बाद राजधर्म और चारित्र धर्म का विच्छेद हो जायेगा। बाद में अकर्म भूमि जैसा व्यवहार रहेगा।

ऊपर अकर्म भूमि के छह क्षेत्र बताये जा चुके है। जिनमें युगलिया मनुष्य रहते हैं। इन क्षेत्रों का वर्णन इस प्रकार समझना। देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र का वर्णन अवसर्पिणी के लगते पहले आरे जैसा समझना। हरिवास, रम्यकवास क्षेत्र का वर्णन अवसर्पिणी के लगते दूसरे आरे जैसा समझना। हेमवय हैरण्यवय क्षेत्र का वर्णन अवसर्पिणी के लगते तीसरे आरे जैसा समझना। छप्पन अन्तरद्वीपों में युगलिया रहते हैं उनका वर्णन अवसर्पिणी के उतरते तीसरे आरे (कर्मभूमि प्रारम्भ होने से काफी पहले समय) के समान समझना। महाविदेह क्षेत्र में सदा लगते चौथे आरे सरीखे भाव वर्तते हैं।

## देवता के 198 भेद

दस भवनपति, पन्द्रह परमाधार्मिक, सोलह वाणव्यंतर, दस जृम्भक, दस ज्योतिषी, तीन किल्विषी, बारह देवलोक, नव लोकांतिक, नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान ये देवता के 99 भेद है, इनके नाम इस प्रकार है:-

**दस भवनपति** : असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार।

**पन्द्रह परमाधामी** : अम्ब, अम्बरीष, श्याम, शबल, रौद्र, महारौद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनुष, कुम्भ, वालुका, वैतरणी, खरस्वर, महाघोष।

**सोलह वाणव्यन्तर** : पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष,

महोरग, गंधर्व, आणपन्ने, पाणपन्ने, इसिवाई, भूयवाई, कन्दे, महाकन्दे, कुहण्डे और पयंगदेवे।

**दस जृम्भक** : अन्न जृम्भक, पान जृम्भक, लयन जृम्भक, शयन जृम्भक, वस्त्र जृम्भक, फल जृम्भक, पुष्प जृम्भक, फल-पुष्प जृम्भक, विद्या जृम्भक और अव्यक्त जृम्भक।

**दस ज्योतिषी** : चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा, ये पाँच ज्योतिषी है। ये पाँच चर और पाँच अचर इस प्रकार ज्योतिषी के दस भेद होते है। चर ज्योतिषी ढाई द्वीप के अन्दर है और पूर्ण ज्योति तथा कांति वाले है। अचर ज्योतिषी ढ़ाई द्वीप के बाहर है, जिनकी ज्योति और कांति चर की अपेक्षा आधी है।

**तीन किल्विषी** : तीन पलिया (तीन पल्योपम की स्थिति वाले), तीन सागरिया, (तीन सागरोपम की स्थिति वाले) और तेरह सागरिया (तेरह सागरोपम की स्थिति वाले), तीन पलिया किल्विषी देव पहले-दूसरे देवलोक के नीचे के प्रतर में रहते है। तीन सागरिया किल्विषी देव, तीसरे-चौथे देवलोक के नीचे के प्रतर में रहते है। तेरह सागरिया किल्विषी देव पाँचवे देवलोक के ऊपर और छठे देवलोक के नीचे रहते है।

**बारह देवलोक** : सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक।

**नव लोकांतिक** : सारस्वत आदित्य, वहिन, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय और अरिष्ट।

**नव ग्रैवेयक** : भद्र, सुभद्र, सुजात, सुमनस, सुदर्शन, प्रियदर्शन, आमोह, सुप्रतिबद्ध और यशोधर।

**पाँच अनुत्तर विमान** : विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध।

देवता के उपर्युक्त 99 भेद हुए। ये 99 अपर्याप्त और 99 पर्याप्त इस प्रकार के कुल 198 भेद हए। देवता की चार लाख योनि है।

देवता के भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक के भेद से चार पकार भी बताये जाते हैं। परमाधामी देवता भवनपति के असुरकुमार जाति के अन्तर्गत है।। दस जृंभक व्यन्तर जाति के अन्तर्गत है। तीन किल्विषी, बारह देवलोक, नव लोकान्तिक, नव ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवता वैमानिक देव हैं।

**चिन्तन** : जीव तत्त्व के इन भेदों को जानने के साथ चिन्तन यही करना है, उपरोक्त भेदों में कुछ भेद को छोड़कर अपना जीव अनंत बार जन्म-मरण कर चुका है। अतः पुनः इन भेदों में जाना नहीं पड़े ऐसा प्रयत्न करें। आस्था और ज्ञानपूर्वक इनकी दया पालेगा वह इस भव में, परभव में परम सुख को पाएगा।

## 2.अजीवतत्त्व

अजीव के जघन्य चौदह भेद उत्कृष्ट 560 भेद हैं। अजीव के चौहद भेद हैं – धर्मास्तिकाय के तीन भेद स्कन्ध, देश, प्रदेश। अधर्मास्तिकाय के तीन भेद स्कन्ध, देश, प्रदेश। आकाशास्तिकार के तीन भेद स्कन्ध, देश, प्रदेश। दसवाँ काल। पुद्गलास्तिकाय के चार भेद स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु पुद्गल। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल के दस भेद अरुपी हैं। पुद्गलास्तिकाय के चारों भेद रुपी हैं।

**अस्तिकाय** : अस्ति का अर्थ प्रदेश होता है और काय का अर्थ समूह अर्थात् प्रदेशों का समूह को अस्तिकाय कहते हैं।

**स्कन्ध** : परस्पर बद्ध प्रदेशों का समुदाय स्कन्ध कहलाता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय द्रव्य रुप से एक हैं अतः ये एक ही स्कन्ध रुप है। पुद्गलास्तिकाय द्रव्य रुप से अनेक है। अतः पुद्गलास्तिकाय के अनेक स्कन्ध हैं। देश, स्कन्ध के भाग को देश कहते हैं। प्रदेश – स्कन्ध या देश में मिला हुआ द्रव्य का अत्यन्त सूक्ष्म भाग, जिसका विभाग न हो सके, प्रदेश कहलाता है। परमाणु–पुद्गलास्तिकाय के स्कन्ध या देश से अलग हुआ प्रदेश परमाणु कहलाता है।

अजीव के 560 भेद – अरुपी अजीव के 30 भेद और रुपी अजीव के 530 भेद।

**अरुपी अजीव के 30 भेद** : धर्मास्किाय, अधर्मास्किाय, आकाशास्तिकाय के तीन–तीन भेद हैं – स्कन्ध (खंध) देश और प्रदेश। दसवाँ – काल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, ये चारों द्रव्य–द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण–इन पाँच–पाँच बोलों से जाने जाते हैं अतः चारों के बीस भेद हुए। उपरोक्त दस और ये बीस मिलाकर अरुपी अजीव के तीस भेद होते हैं।

धर्मास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा आदि अन्त रहित है, भाव की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित, अरुपी, अजीव, शाश्वत, लोक व्यापी और असंख्यात प्रदेशी है। गुण की अपेक्षा चलन गुण वाला है। जैसे - पानी के आधार से मछली चलती है उसी तरह जीव और पुद्गल धर्मास्तिकाय के आधार से गति करते है।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है, काल की अपेक्षा आदि अन्त रहित है, भाव की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित, अरुपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और असंख्यात प्रहेशी है, गुण की अपेक्षा स्थिर गुण वाला है। जैसे - थका हुआ पथिक छाया के आधार से ठहरता है उसी तरह जीव और पुद्गल अधर्मास्तिकाय के आधार से ठहरते है।

आकाशास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा एक द्रव्य है, क्षेत्र की अपेक्षा लोक अलोक प्रमाण है, काल की अपेक्षा आदि अन्त रहित है, भाव की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित, अरुपी, अजीव, शाश्वत, सर्वव्यापी और अनन्त प्रदेशी है। लोकाकाश धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय की तरह असंख्यात प्रदेशी ही है। गुण की अपेक्षा पोलार गुण-अवकाश देने का गुण यानि जीव और पुद्गल का अवकाश देना आकाश का गुण है। भींत में खूटी और दूध में बताशे का दृष्टांत।

काल द्रव्य - द्रव्य की अपेक्षा अनन्त द्रव्यों पर प्रवर्तता है। क्षेत्र की अपेक्षा ढ़ाई द्वीप प्रमाण। काल की अपेक्षा आदि अन्त रहित। भाव की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित अरुपी, अजीव, शाश्वत, और अप्रदेशी है। गुण की अपेक्षा वर्तना गुण-नये को पुराना करना और पुराने को नष्ट करना- यानी पर्यायें बदलने में सहायता देना काल का गुण है। कपड़े को कैंची का दृष्टान्त। अरुपी अजीव के उपरोक्त तीस भेद हुए।

## रुपी अजीव के 530 भेद इस प्रकार है

वर्ण के पाँच भेद – काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। गंध के दो भेद – सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध। रस के 5 भेद – तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा। स्पर्श के आठ भेद– खुरदरा (कर्कश), सुहाला (मृदु), हल्का, भारी, शीत, उष्ण, लूखा (रुक्ष) और चोपड़िया (स्निग्ध)। संठान के पाँच भेद – परिमंडल, वट्ट, तंस, चउरंस और आयत।

वर्ण के 100 भेद : काला का किया भाजन, चार का किया प्रतिपक्ष बोल पावे बीस–दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संठाण। इसी प्रकार नीला, लाल, पीला, सफेद प्रत्येक में 20–20 बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार वर्ण 100 भेद हुए।

गन्ध के 46 भेद – सुरभिगंध का किया भाजन और दुरभिगन्ध का किया प्रतिपक्ष। बोल पावे तेईस–पाँच वर्ण, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संठाण। इसी तरह दुरभिगन्ध में भी 23 बोल पाते हैं। इस प्राकर गंध के 46 भेद हुए।

रस के 100 भेद : तीखा का किया भाजन चार का किया प्रतिपक्ष बोल पावे बीस – पाँच वर्ण, दो गंध, आठ स्पर्श और पाँच संठाण। इसी तरह कड़वा, कषैला, खट्टा और मीहठा प्रत्येक में बीस–बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार रस के 100 भेद हुए।

स्पर्श के 184 भेद : खुरदरा का किया भाजन सुंहाला का किया प्रतिपक्ष, बोल पावे तेईस – पाँच वर्ण, दोगन्ध, पाँच रस, 6 स्पर्श (खुरदरा और सुंहाला के सिवाय) और पाँच संठाण। इसी तरह सुंहाला में भी तेईस बोल पाये जाते है। दोनों के 46 भेद होते हैं। इसी तरह हल्का और भारी के 46 भेद शीत और उष्ण के 46 भेद और लुखा चोपड़िया के 46 भेद होते हैं। इस प्राकर आठ स्पर्श के 184 भेद हुए।

संठाण के 100 भेद : परिमंडल का किया भाजन चार का किया

प्रतिपक्ष-बोल पावे बीस - पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श। इसी प्रकार वट्ट, तंस, चउरंस और आयत प्रत्येक में बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार संठाण के 100 भेद हुए।

इस प्रकार रुपी अजीव के 100+46+100+184+100=530 भेद हुए। अरुपी अजीव के 30 और रुपी अजीव के 530 सब मिलाकर अजीव के 560 भेद हुए।

**चिन्तन :** अजीव तत्त्व मेरे जीवन व्यवहार में उपयोगी एवं उपकारी है, किन्तु इनके प्रति आसक्त नहीं होना है क्योंकि ये नाशवान है, अनित्य है, पर्याय से परिवर्तनशील है ऐसा समझकर इनसे मोह को उतारना है, रति-अरति एवं राग-द्वेष न्यून करना है इसी से इस भव और परभव में परम सुख को पाऊंगा।

## 3.पुण्यतत्त्व

पुण्य नौ प्रकार से बंधता है और बयालीस प्रकार से भोगा जाता है।

1. अन्न पुण्य – अन्न देने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

2. पान पुण्य – पानी पिलाने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

3. लयन पुण्य – जगह–मकान देने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

4. शयन पुण्य – शय्या पाट पाटला आदि देने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

5. वस्त्र पुण्य – कपड़ा देने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

6. मन पुण्य – मन का शुभ योग प्रवर्ताने से शुभ चिन्तन करने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

7. वचन पुण्य – वचन का शुभयोग प्रवर्ताने से शुभ हितकार मधुर वचन बोलने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

8. काय पुण्य – शरीर द्वारा दूसरों को सहायता करने, सुख उपजाने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

9. नमस्कार पुण्य – गुणवालों को नमस्कार करने से उनका विनय-करने से पुण्य प्रकृति बंधती है।

पुण्य भोगने की 42 प्रकृतियाँ हैं। ये चार अघाती कर्मों के उदय होने से भोगी जाती हैं। वेदनीय कर्म के उदय से एक साता वेदनीय। आयु कर्म के उदय से तीन–देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु। गोत्र कर्म के उदय से एक–उच्च गोत्र। नाम कर्म के उदय से 37–1 मनुष्य गति, 2 देव गति, 3. पंचेन्द्रिय जाति, 4–8 पाँच शरीर–औदारिक, वैक्रिय, आहार, तैजस, कार्मण 9–11 तीन अंगोपांग–औदारिक अंगोपांग, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक अंगोपांग, 12 वज्र ऋषभ नाराच संहनन, 13 समचउरंस संस्थान, 14 शुभ वर्ण, 15 शुभ

गन्ध, 16 शुभ रस, 17 शुभ स्पर्श, 18-19 दो आनुपूर्वी - देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, 20 शुभ विहायोगति, 21-30 त्रस दशक- त्रस नाम, बादर नाम, पर्याप्त नाम, प्रत्येक नाम, स्थिर नाम, शुभ नाम, सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम, यशः कीर्तिनाम, 31 अगुरुलघु नाम, 32 पराघात नाम, 33 आतप नाम, 34 उद्योत नाम, 35 श्वासोच्छ्वास नाम, 36 निर्माण नाम, 37 तीर्थंकर नाम। इस प्रकार 1+3+1+37=42 पुण्य प्रकृतियां हुई।

**चिन्तन :** पुण्य तत्त्व मेरी साधना में सहयोगी है। मुझे सुख प्रिय है और सुख मिलता है पुण्य से। पुण्य बढ़ाने के लिए ज्ञानियोंने जो उपरोक्त उपाय बताए हैं। इन्हें अहोभाव पूर्वक शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार करते हुए प्राप्त साधनों का सदुपयोग करूंगा तो यहां-वहां सारे जहाँ में परम सुख को पाऊंगा।

## 4.पाप तत्त्व

पाप अठारह प्रकार से बंधता है और 82 प्रकार से भोगा जाता है। पाप बांधने के अठारह प्रकार –

1.प्राणातिपात – जीवों की हिंसा करना–जीवों को दुःख पुहंचाना

2. मृषावाद – असत्य–झूठ बोलना।

3. अदत्तादान – चोरी करना–स्वामी की आज्ञा बिना कोई वस्तु बिना दिये ग्रहण करना

4. मैथुन – कुशील सेवन करना–ब्रह्मचर्य पालन न करना।

5. परिग्रह – धन धान्य आदि का संग्रह करना और उसमें ममत्व मूर्छा (आसक्ति) रखना।

6. क्रोध – गुस्सा करना–शान्ति न रखना।

7. मान – अहंकार करना–चित्त की कोमलता और विनय का अभाव

8. माया – कपट करना–ऋजुता सरलता न रखना

9. लोभ – तृष्णा–लालच–धन धान्यादि में गृद्धि–प्राप्त वस्तु में आसक्ति भाव रखना।

10. राग मनोज्ञ वस्तु में स्नेह रखना–माया और लोभ से राग उत्पन्न होता है।

11. द्वेष – अमनोज्ञ वस्तु से द्वेष करना–क्रोध और मान से द्वेष उत्पन्न होता है।

12. कलह – क्लेश–झगड़ा करना।

13. अभ्याख्यान – किसी पर झूठा दोष लगाना, कलंक देना।

14. पैशुन्य – चुगली करना–किसी के दोष प्रकट करना।

15. परपरिवाद – दूसरे की निन्दा, बुराई करना।

16. रति अरति – पाप कर्मों में चित्त लगाना–रुचि रखना और संयम तप आदि धर्म कार्यों में अरूचि रखना अथवा इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय पाकर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ विषय पाकर खिन्न होना।

17. मायामोसो (माया मृषावाद) – कपट सहित झूठ बोलना।

18. मिच्छादंसणसल्ल (मिथ्या दर्शनशल्य) – तत्त्व को अतत्त्व मानना और अतत्त्व को तत्त्व मानना । कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना–सुदेव, सुगुरु, सुधर्म की श्रद्धा न रखना यानी श्रद्धा का विपरीत होना।

पाप कर्म भोगने की 82 प्रकृतियाँ हैं। जो आठ कर्मों के उदय में आने से भोगी जाती हैं। 82 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–

1–5. ज्ञानावरणीय की पाँच प्रकृतियाँ – मतिज्ञानावरणीय, श्रुत ज्ञानावरणीय, अवधि ज्ञानावरणीय, मनःपर्यय ज्ञानावरणीय, केवल ज्ञानावरणीय।

6–14. दर्शनावरणीय की नौ प्राकृतियाँ – चक्षु दर्शनावरणीय, अचक्षु दर्शनावरणीय, अवधि दर्शनावरणीय, केवल दर्शनावरणीय, निद्रा, निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला–प्रचला, थीणद्धि (स्त्यागनृद्धि)

15. वेदनीय की एक प्रकृति–असाता वेदनीय

16–41. मोहनीय कर्म की 26 प्रकृतियँ – मिथ्यात्व–मोहनीय, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान माया लोभ, प्रत्याख्यांनावरण, क्रोध, मान, माया लोभ, संज्वलन क्रोध, मान माया लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद।

42. आयु कर्म की एक प्रकृति–नरकायु

43–76. नाम कर्म की 34 प्रकृतियाँ – दो गति– नरक गति, तिर्यंच गति, चार जाति – एकेन्द्रिय, बेईन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रय, पाँच संहनन – ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका, छेवट्ट (सेवार्त), पाँच संठाण –

न्यग्रोध परिमण्डल संठाण, सादि संठाण, वामन संठाण, कुब्जक संठाण, हुण्डक संठाण, अशुभ वर्ण, अशुभ गंध, अशुभ रस, अशुभ स्पर्श, दोआनुपूर्वी–नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, अशुभ विहायोगति, उपघात नाम, स्थावरदशक – स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्त नाम, साधारण नाम, अस्थिर नाम, अशुभ नाम, दुर्भग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम, अयशः कीर्तिनाम,

77. गोत्र कर्म की एक प्रकृति नीच गौत्र

78–82. अन्तराय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय इस तरह पाप कर्म भोगने की 5+9+1+26+1+34+1+5=82 प्रकृतियाँ हुई।

**चिन्तन** : पावन को पामर एवं परम को पतन में बदलने वाला एवं गिराने वाला है पाप। ऐसे पाप का बोध ज्ञानियों ने दिया है। दुःख मुझे प्रिय नहीं किन्तु दुःख का कारण पाप को मैने छोड़ा नहीं तो दुःख मुक्ति कैसे होगा? इसके लिए एक ही उपाय है मन–वचन–काया के योगों का सदुपयोग। ऐसा पुरुषार्थ यदि में करुंगा तो दुःख बहुल संसार से मुक्त होकर क्षीघ्र ही परम अवस्था को पा सकूंगा।

## 5.आश्रव तत्त्व

आश्रव के जघन्य पांच भेद, मध्यम 20 भेद और उत्कृष्ट 42 भेद।

आश्रव के 57 भेद भी हैं। पाँच मिथ्यात्व (आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, आभिनिवेशिक, सांशयिक और अनाभोगिक) बारह अव्रत (पाँच इन्द्रिय और मन वश न करे, छह काया की हिंसा का त्याग न करें), पच्चीस कषाय (सोलह कषाय और नौ नोकषाय) पन्द्रह योग-ये आश्रव के 57 भेद हैं।

आश्रव के 5 भेद- मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग।

आश्रव के 20 भेद-

1. मिथ्यात्व - मिथ्यात्व सेवे, विपरीत श्रद्धा रखे तो आश्रव।

2. अव्रत - व्रत प्रत्याख्यान धारण नहीं करे तो आश्रव।

3. प्रमाद - पाँच प्रमाद मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा का सेवन करे तो आश्रव।

4. कषाय - पच्चीस कषाय का सेवन करे तो आश्रव

5. अशुभयोग - मन,वचन, काया को अशुभ व्यापार में लगावे तो आश्रव।

6.प्राणतिपात - जीव हिंसा करे तो आश्रव

7. मृषावाद - झूठबोले तो आश्रव

8. अदत्तादान - चोरी करे स्वामी की आज्ञा बिना उसकी वस्तु बिना दिये ग्रहण करे तो आश्रव

9. मैथुन - कुशील सेवन करे तरे आश्रव

10. परिग्रह - धन धान्यादि द्रव्य रखे उनमें ममत्व आसक्ति रखे तो आश्रव।

11-15. श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेनिद्रय वश में न रखे तो आश्रव।

16. मन वश में न रखे तो आश्रव

17. वचन वश में न रखे तो आश्रव

18. काया वश में न रखे तो आश्राव

19. भण्ड उपकरण अयतना से लेवे, अयतना से रखे तो आश्रव

20. सूई कुशाग्र मात्र आयतना से लेवे और अयतना से रखे तो आश्रव।

आश्रव के 42 भेद -

1-5. पाँच अव्रत - प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का त्याग न करना

6-10. पाँच इन्द्रिय - श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय को वश में न रखना-इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों पर राग और अमनोज्ञ विषयों पर द्वेष रखना

11-14. चार कषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ को सेवन करना

15-17. तीन योग- मन,वचन, काया को अशुभ व्यापार मे लगाना

18-42, पच्चीस क्रियाओं का सेवन करना।

कर्म बन्ध के कारणभूत दुष्ट व्यापार विशेष को क्रिया कहते हैं। क्रिया पच्चीस होती हैं।

**1. काईया (कायिकी)** : शरीर से होने वाली - उत्क्षेपण (ऊपर फैंकना) नीचे पटकना आदि व्यापार से, अव्रत से, दुष्ट योगों से, जो क्रिया लगती है उसे कायिकी क्रिया कहते हैं।

**2. अहिगरणिया (अधिकरणकी)** : आत्मा को नरक आदि में ले जाने वाला व्यापार अधिकरण कहलाता है, तथा तलवार आदि शस्त्र

अधिकरण हैं। अधिकरण से लगने वाली क्रिया को अहिगरणिया क्रिया कहते हैं द्रव्य शस्त्र तलवार आदि हैं और भाव शस्त्र अशुभ मन आदि के योग हैं।

**3. पाओसिया (प्रद्वेषकी) जीव अजीव पर प्रद्वेष** : मत्सर भाव (ईर्ष्या) रखने से लगने वाली क्रिया को पाओसिया क्रिया कहते हैं।

**4. परियावणिया (परितापनिकी)** : अपने तथा दूसरेके देह को ताड़न आदि दुःख पहुँचाना से, शान्त, क्लेश को वापिस ताजा करने से लगने वाली क्रिया को परियावणिया क्रिया कहते हैं।

**5. पाणाइवायकिरिया (प्राणातिपातिकी)** : पाँच इन्द्रियाँ आदि दस प्राण हैं। प्राणों को विनाश करने से लगने वाली क्रिया को पाणइवाया क्रिया कहते हैं।

**6. आरम्भिया (आरम्भिकी)** : पृथ्वीकाय आदि छह काय के जीवों की हिंसा को आरम्भ कहते हैं। अजीव में जीव का आरोप कर उसकी हिंसा करना भी आरम्भ है। आरम्भ के व्यापार से लगने वाली क्रिया को आरम्भिया क्रिया कहते हैं।

**7. परिग्गहिया (पारिग्रहिकी)** : धन, धान्य, क्षेत्र, वस्तु, सोना, चांदी, द्विपद, चतुष्पद आदि का संग्रह करने से व उन पर मूर्छा ममत्व रखने से लगने वाली क्रिया को परिग्गहिया क्रिया कहते हैं।

**8. मायावत्तिया (मायाप्रत्ययिकी)** : अपने बुरे भावों को छिपाकर अथवा जाली लेखादि द्वारा दूसरों को ठगने से लगने वाली क्रिया को माया वत्तिया कहते हैं।

**9. अपच्चक्खाणकिरिया (अपच्चक्खाणवत्तिया-अप्रत्याख्यानिकी)** : जीव और अजीव सम्बन्धी त्याग प्रत्याख्यान नहीं करने से लगने वाली क्रिया को अपच्चक्खाणकिरिया कहते हैं।

**10. मिच्छादंसणवत्तिया (मिथ्यादर्शनप्रतयिकी)** : तत्त्व में

अतत्त्व और अतत्त्व में तत्त्व का श्रद्धान रखना अथवा वस्तुको हीन या अधिक मानना मिथ्यादर्शन है। मिथ्यादर्शन से लगनेवाली क्रिया को मिच्छादंसणवत्तिया क्रिया कहते हैं।

**11.दिट्ठिया (दृष्टिजा) :** राग द्वेष पूर्वक हाथी घोड़े आदि जीव तथा महल मकान चित्र आदि अजीव को देखने से लगने वाली क्रिया को दिट्ठिया क्रिया कहते हैं।

**12. पुट्ठिया (स्पृष्टिजी–पृष्टिकी) :** राग द्वेष के वश में होकर जीव अजीव का स्पर्श करने से अथवा राग द्वेष पूर्वक जीव अजीव विषयक प्रश्न पूछने से होने वाली क्रिया को पुट्ठिया क्रिया कहते हैं।

**13.पाडुच्चिया (प्रातीत्यिकी) :** जीव अजीव के आश्रय से जो राग द्वेष की उत्पति होती है उससे लगने वाली क्रिया को पाडुच्चिया क्रिया कहते हैं।

**14. सामन्तो वणिवाईया (सामन्तोपनिपातिकी) :** चारों ओर से लोग आकर किसी के गाय, घोड़े आदि जीव की या रथ, मकान, वस्त्र, आभूषण आदि अजीव की प्रशंसा करते हैं। उस प्रशंसा को सुनकर खुश होने से लगने वाली क्रिया को सामन्तोवणिवाइया क्रिया कहते हैं। घी, तेल आदि के पात्र को प्रमादवश खुला छोड़ देने से उसमें चारों ओर से जीव गिरकर मर जाते हैं। इससे लगने वाली क्रिया को भी सामन्तोवणिवाइया क्रिया कहते हैं।

**15. साहत्थिया (स्वहस्तिकी) :** अपने हाथ में पकड़े हुए जीव अथवा अजीव शस्त्र आदि द्वारा किसी जीव को मारने से अथवा अपने हाथ से जीव का अथवा अजीव वस्त्र, पात्रादि का ताड़न करने से लगने वाली क्रिया को साहत्थिया क्रिया कहते हैं।

**16. णेसत्थिया (नैसृष्टिकी) :** राजा आदि की आज्ञा से फव्वारे आदि द्वारा जल छोड़ने से तथा गोफन से पत्थर आदि फेंकने से लगने वाली क्रिया को णेसत्थिया क्रिया कहते है।

**17. आणवणिया (आज्ञापनिकी या आनयनिकी) :** जीव अथवा

अजीव के सम्बन्ध में आज्ञा देने से या दूसरे द्वारा जीव अथवा अजीव को मंगवाने से लगने वाली क्रिया को आणवणिया क्रिया कहते है।

**18. वेयारणिया (विदारणीया = वैदारणिकी)** : जीव अथवा अजीव को विदारण-चीर फाड़ करने से लगने वाली क्रिया को वेयारणिया क्रिया कहते हैं। अथवा व्यापार में भाव का फर्क होने पर दलाल भाव में तोड़ भांग कर सौदा करा देता है उससे लगने वाली क्रिया को वेयारणिया क्रिया कहते हैं। अथवा ठगने की बुद्धि से जीव अजीव की असत् गुणों से प्रशंसा करने से लगने वाली क्रिया भी वेयारणिया क्रिया कहलाती है।

**19. अणाभोगवत्तिया (अनाभोग प्रत्ययिकी-अनाभोगिकी)** : बिना उपयोग के लापरवाही के साथ वस्त्र पात्रादि को ग्रहण करने और रखने से तथा अनुपयोगपूर्वक चलने फिरने से लगने वाली क्रिया को अणाभोगवत्तिया क्रिया कहते हैं।

**20. अणवकंखवत्तिया (अनवकांक्षाव्रत्ययिकी)** : स्व-वर शरीर की परवाह किये बिना उसे क्षति पहुँचाने वाले व्यापार से लगने वाली क्रिया को अणवकंखवत्तिया क्रिया कहते हैं। अथवा इहलोक परलोक की परवाह न करके दोनों लोक विरोधी हिंसा चोरी आदि का आचरण करने से लगने वाली क्रिया को अणवकंखवत्तिया क्रिया कहते हैं।

**21. पेज्जवत्तिया (प्रेमप्रत्ययिकी)** : राग वश माया से तथा लोभ से ऐसा वचन बोले जिससे दूसरों को प्रेम उत्पन्न हो उसे पेज्जवत्तिया क्रिया कहते हैं।

**22. दोसवत्तिया (द्वेषप्रत्ययिकी)** : द्वेषवश होकर स्वयं क्रोध, मान करने से तथा दूसरों को क्रोध, मान उत्पन्न हो ऐसा व्यवहार करने से लगने वाली क्रिया को दोसवत्तिया क्रिया कहते हैं।

**23. पओगकिरिया (प्रयोगक्रिया)** : आर्त, रौद्र ध्यान करना,

तीर्थंकरों द्वारा गर्हित सावद्य भाषा, स्वच्छन्दतापूर्वक बोलना तथा प्रमादपूर्वक गमनागमन आदि करना इस प्रकार के मन, वचन, काया के व्यापारों से लगने वाली क्रिया को पओग क्रिया कहते हैं।

**24. समुदाणकिरिया (सामुदान क्रिया–सामुदनिकी)** : जिस क्रिया से आठ कर्मों का समुदाय ग्रहण किया जाता है अथवा नाटक, सिनेमां आदि मेले में एकत्रित अनेक जीवों के सरीखी अध्यवसायों और हंसने, खेलने, आरम्भकी, प्रशंसा करने रुप सरीखी क्रियाओं के एक साथ समुदाय रुप में सभी के जो सरीखा कर्म बन्ध होता है उसे समुदाण क्रिया कहते हैं। ये सभी जीव जन्मान्तर में इन कर्मों का फल एक साथ भोगते हैं।

**25. इरियावहिया (इर्यापथिकी)** : उपशान्तमोह, क्षीण मोह और केवली भगवान के उपयोग पूर्वक गमनागमन करते, सोते, बैठते, खाते पीते, भाषण करते, वस्त्र पात्रादि रखते, ग्रहण करते इत्यादि क्रिया करते समय योगवश जो साता वेदनीय कर्म का बंध होता है उसे इरियावहिया क्रिया कहते हैं। यह क्रिया पहले समय में बंधती है, दूसरें समय में वेदी जाती है और तीसरे समय में उसकी निर्जरा होती है।

इस प्रकार आश्रव के 5+5+4+3+25=42 भेद हुए।

**चिन्तन** : संसार का कारण कर्म है। आत्मा के साथ कर्म का कारण आश्रव है। जीव अनादिकाल से आश्रव के कारणं जन्म–मरण की अटवी में भटक रहा है। ज्ञानी भगवंतों ने आश्रव के भेद–प्रभेद बताते हुए उसके स्वरुप को समझाने का प्रयास किया है। मुझे मेरे आत्मोत्थान के लिए आश्रव को त्याग करना है एवं सर्वत्र सुख का अनुभव करना है।

## 6.संवर तत्त्व

संवर तत्त्व के जघन्य 20, उत्कृष्ट 57 भेद होते हैं। संवर के बीस भेद इस प्रकार हैं-

1. **सम्यक्त्व** - शुद्धयथार्थ श्रद्धा रखे तो संवर।

2. **व्रत** - प्रत्याख्यान अंगीकार करे तो संवर।

3. **अप्रमाद** - पाँच प्रकार का प्रमाद सेवन न करे ता संवर।

4. **अकषाय** - पच्चीस कषाय का त्याग करे तो संवर।

5. **शुभ योग** - मन वचन काया के शुभ योग प्रवर्तावे तो संवर।

6. **अहिंसा** - प्राणातिपात जीव हिंसा का त्याग करे तो संवर।

7. **सत्यवचन बोले** - झूठ का त्याग करे तो संवर।

8. **अदत्तादान** - चोरी का त्याग करे तो संवर।

9. **मैथुन** - कुशील का त्याग करे ब्रह्मचर्य को सेवन करे तो संवर

10. **परिग्रह का त्याग करे**-धन,धान्यादि में मूर्छा, ममत्व न रखे तो संवर।

11-15. **पाँच इन्द्रिय**-श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय को वश में रखे, मनोज्ञ शब्द, रुप, गन्ध, रस और स्पर्श में राग न रखें और अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष न करे तो संवर।

16. मन वश में रखे तो संवर।

17. वचन वश में रखे, सावद्य भाषा का त्याग करे, निरवद्य भाषा बोले , मौन रखे तो संवर।

18. काया वश में रखे, सावद्य क्रिया का त्याग करे तो संवर।

19. भण्ड उपकरण यतना से लेवे व यतना से रखे तो संवर।

20. सुई कुशाग्र मात्र यतना से लेवे यतना से रखे तो संवर।

संवर के 57 भेद – 22 परीषह, 5 समिति, 3 गुप्ति, 10 यतिधर्म, 12 भावना और 5 चारित्र ये संवर के 57 भेद हैं।

**परिषह** – चारित्र साधना में शारीरिक, मानसिक अनुकूल प्रतिकूल कष्ट उपस्थित होने पर संयम से विचलित न होते हुए संयम मार्ग में दृढ़ रहना और कर्मों की निर्जरा के लिये उन्हें समभाव पूर्वक सहन करना परीषह है।

**बाईस परीषह**

| | |
|---|---|
| 1.क्षुधा परीषह | 2. पिपासा (तृषा) परीषह |
| 3. शीत परीषह | 4. उष्ण परीषह |
| 5. दंशमशक परीषह | 6. अचेल परीषह |
| 7. अरति परीषह | 8. स्त्री परीषह |
| 9. चर्या परीषह | 10.निषद्या (णिसज्जा) परीषह |
| 11. शय्या परीषह | 12. आक्रोश परिषह |
| 13. वध परीषह | 14. याचना परीषह |
| 15. अलाभ परीषह | 16.रोग परीषह |
| 17. तृणस्पर्श परीषह | 18. जल्ल परीषह |
| 19. सत्कार पुरस्कार परीषह | 20. प्रज्ञा परीषह |
| 21. अज्ञान परीषह | 22. दर्शन परीषह |

**समिति के पाँच भेद** – ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आयाणभण्डमत्तणिक्खेवणा (आदान भण्ड मत्र निक्षेपणा) समिति, उच्चार पासवण खेल जल्ल सिंघाण परिट्ठावणिया

1.उच्चार–विष्ठा, 2. प्रश्रवण–पेशाब, 3. खेल–मुंह से निकलने वाला श्लेष्म, 4. सिंघाण–नाक से निकलने वाला श्लेष्म, 5.जल्ल–शरीर का मैल

(उच्चार प्रश्रवण खेल सिंघाण जल्लपरिस्थापनिका) समिति।

**तीन गुप्ति** – मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना और

शुभ प्रवृत्तियों में मन वचन काया को लगाना गुप्ति कहलाता है। गुप्ति के 3 भेद – मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति।

**दश यतिधर्म** – 1. खंती (क्षमा), 2. मुत्ति (मुक्ति), 3.अज्जवे (आर्जव–ऋजुता), 4.मद्दवे (मार्दव–मृदुता), 5. लाघवे (लघुता), 6. सच्चे (सत्य), 7. संजमे (संयम), 8. तवे (तप), 9. चियाए(त्याग), 10. बंभचेरवासे (ब्रह्मचर्य), ये दश यति धर्म हैं।

**बारह भावना** : 1. अनित्य भावना, 2.अशरण भावना, 3. संसार भावना, 4.एकत्व भावना, 5. अन्यत्व भावना, 6. अशुचि भावना, 7. आश्रव भावना, 8. संवर भावना, 9. निर्जरा भावना, 10. लोक भावना, 11. बोधि दुर्लभ भावना, 12. धर्म भावना।

**बारह भावना**

| क्रम सं. | भावना का नाम | किसने भाई |
|---|---|---|
| 1. | अनित्य | भरतचक्रवर्ती ने |
| 2. | अशरण | अनाथी मुनि ने |
| 3. | संसार | शालिभद्रजी ने |
| 4. | एकत्व | नभिराज ऋषि ने |
| 5. | अन्यत्व | मृगापुत्रजी ने |
| 6. | अशुचि | सनत्कुमार चक्रवर्ती ने |
| 7. | आश्रव | समुद्रपाल मुनि ने |
| 8. | संवर | हरिकेशी मुनि ने |
| 9. | निर्जरा | अर्जुन अणगार ने |
| 10. | लोक | शिवराज ऋषि ने |
| 11. | बोधि दुर्लभ | भ.ऋषभ के 98 पुत्रों ने |
| 12. | धर्म भावना | धर्म रुचि अणगार ने |

**पाँच चारित्र** : आत्मा का शुद्ध दशा में स्थिर रहने का प्रयत्न करना चारित्र है। जिस क्रिया द्वारा, राग, द्वेष, मोह, कषाय आदि विकार नष्ट होकर आत्मा का शुद्ध स्वरुप प्रकट हो उसे चारित्र कहते हैं। परिणाम विशुद्धि के

तारतम्य की अपेक्षा से चारित्र पाँच प्रकार के बताये गये हैं - 1.सामायिक चारित्र, 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र, 3. परिहार विशुद्धि चारित्र, 4.सूक्ष्म सम्पराय चारित्र, 5. यथाख्यात चारित्र।

(संवर के 57 भेदों मं पाँच चारित्र के बदले कोई कोई 5 आचार गिनते हैं।)

**आचार पाँच** : 1.ज्ञानाचार, 2. दर्शनाचार, 3. चारित्राचार, 4.तपाचार, 5. वीर्याचार।

**चिन्तन** : जिन शासन में आत्म शुद्धि हित कर्म निर्वृत्ति के लिए संवर तत्त्व का निरूपण किया है। प्रवृत्ति में यतना, अनुकूल-प्रतिकूल में समभाव, मन वचन काया तथा इन्द्रियों का निग्रह, भावनाओं में शुभता, विचार के साथ आचार, कषाय की मन्दता, त्याग प्रत्याख्यान तथा अप्रमत्तता से कर्म बन्धन के कारणों से बचना संवर है। इस संवर धर्म की आराधना जितना करूंगा उससे निकट भविष्य में परम सुख का अनुभव करूंगा।

# 7.निर्जरा तत्त्व

निर्जरा के बारह भेद होते हैं - छह बाह्य तप और छह आभ्यन्तर तप। 1. अनशन, 2. ऊनोदरी, 3. भिक्षाचर्या, 4. रसपरित्याग, 5. काया क्लेश और 6. प्रतिसंलीता - ये छह बाह्य तप है। 7. प्रायश्चित, 8. विनय, 9. वैयावच्च, 10. स्वाध्याय, 11.ध्यान, 12.व्युत्सर्ग-ये छह आभ्यन्तर तप हैं। कर्म निर्जरा की जिस साधना में बाह्य द्रव्य एवं शरीर का विशेष उपयोग एवं सहयोग लिया जाता है वो बाह्य तप है। तथा जिस साधना में भावना एवं अध्यवसायों की प्रमुख्ता में शरीरादि का सहयोग लिया जाता है वो आभ्यन्तर तप है।

## 1.अनशन

**अशन** - जिससे भूख शान्त हो, जैसे दाल, भात, रोटी, विगय आदि।

**पान** - जिससे प्यास शान्त हो जैसे जल, धोवन आदि।

**खादिम** - जिससे भूख और प्यास दोनो शान्त हो जैसे दूध, छाछ, मेवा, मिष्ठान आदि।

**स्वादिम** : जिससे भूख और प्यास की शान्ति न हो किन्तु मुँह साफ करने के लिये जो भोजन के बाद खाये जाये, जैसे पान, इलायची, सुपारी, लौंग, चूर्ण, खटाई आदि।

अशन, पान, खादिम (खाइस) और स्वादिम, इन चार प्रकार के आहार का अथवा पान के सिवाय शेष तीन प्रकार के आहार का मर्यादित समय के लिये अथवा जीवन पर्यन्त त्याग करना अनशन तप है। अनशन तप के दो भेद - 1.इत्तरिय (इत्वरिक) अनशन और 2 आवकहिय (यावत्कथिक) अनशन। इत्वरिक अनशन थोड़े काल का होता है और यावत्कथिक अनशन जीवन पर्यन्त का होता है।

**1.इत्वरिक अनशन के चौदह भेद** - उपवास, बेला, तेला, चोला,

पंचोला, छह, सात, अर्धमास, मास, दो मास, तीन मास, चार मास, पाँच मास, छह मास,

(भगवान ऋषभदेव के शासन में बारह मास, मध्य के बाईस तीर्थंकर के शासन में आठ मास और अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन में छह मास की उत्कृष्ट इत्वरिक अनशन तप माना गया है। (प्रवचन सारोद्धार)

**आवकहिय (यावत्कथिक)** : अनशन के 3 भेद - 1 भक्त प्रत्यायखन, 2.इंगितमरण, 3.पाद पोपगमन (पाओवगमन)

## 2. ऊनोदरी

भोजन, वस्त्र, पात्र आदि का जो परिमाण बताया गया है उसमें कमी रखना, क्रोधाधि के आवेश को कम करना दबाना ऊनोदरी तप कहलाता है। ऊनोदरी के दो भेद-1 द्रव्य ऊनोदरी, 2. भाव ऊनोदरी।

**1.द्रव्य ऊनोदरी के 2 भेद** - आहार पानी की ऊनोदरी और उपकरण की ऊनोदरी। उपकरण ऊनोदरी के दो भेद - वस्त्र की ऊनोदरी और पात्र की ऊनोदरी। वस्त्र में 3 चादर का कल्प है तो दो रखे एक रखे या जीर्ण वस्त्र रखे तो वस्त्र की ऊनोदरी है। पात्र में 3 का कल्प है तो दो रखे एक रखे या जीर्ण पात्र रखे तो पात्र की ऊनोदरी है। आहार पानी की ऊनोदरी-पुरुष का आहार 32 कवल का, स्त्री का 28 कवल का और नपुंसक का 24 कवल का होता है। तात्पर्य यह है कि पुरुष, स्त्री, नपुंसक का जितना जितना आहार चाहिये उसके क्रमशः 32,28, 24 भाग कर लेने चाहिये। यह भाग ही कवल कहलाता है। इस प्रमाण में पुरुष एक कवल आहार कम करे तो जघन्य ऊनोदरी, आठ कवल आहार का त्याग करे तो पाव ऊनोदरी, सोलह कवल आहार का त्याग करे तो आधी ऊनोदरी, चौबीस कवल आहार का त्याग करे तो पौन ऊनोदरी और 31 कवल आहार का त्याग करे, केचल एक कवल खावे तो उत्कृष्ट ऊनोदरी होती है। यह पुरुष की आहार पानी की ऊनोदरी हुई। इसी तरह स्त्री और नपुंसक की आहार की ऊनोदरी समझनी चाहिये।

**2.भाव ऊनोदरी के आठ भेद** : 1.अप्प कोहे, 2. अप्प माणे, 3. अप्प माए, 4. अप्प लोहे, 5. अप्प कलहे, 6. अप्प सद्दे, 7. अप्पझंझे, 8.अप्प तुमं-तुमे। क्रोध, मान, माया लोभ, कलह, शब्द (रात्रि मे असंयती के जागने के भय से) झंझ(कोप युक्त वचन अथवा अनर्थक प्रलाप), तुमंतुमे (हृदयस्थ कोप विशेष) को घटाना या इनका त्याग करना भाव ऊनोदरी है।

## 3.भिक्षाचर्या

भिक्षाचर्या विविध प्रकार के अभिग्रह धारण कर भिक्षा का संकोच करते हुए विचरना भिक्षाचर्या तप है। अभिग्रह लेकर भिक्षा लेने से वृत्ति का संकोच होता है, इसलिए यह तप वृत्ति-संक्षेप नाम से भी कहा जाता है। भिक्षाचर्या के तीस भेद हैं-1.दव्वाभिग्गह चरए, 2.खेत्ताभिग्गह चरए, 3. कालाभिग्गह चरए, 4. भावाभिग्गह चरए, 5. उक्खित्त चरए, 6.णिक्खित्त चरए, 7. उक्खित्तणिक्खित्त चरए, 8. णिक्खित्तउक्खित्त चरए, 9. वट्टिज्जमाण चरए, 10. साहरिज्जमाण चरए, 11.उवणीअ चरए, 12. अवणीअ चरए, 13. उवणीअ अवणीअ चरए, 14. अवणीअ उवणीअ चरए, 15. संसट्ठ चरए, 16.असंसट्ठ चरए, 17. तज्जाय संसट्ठ चरए, 18. अण्णाय चरए, 19. मोण चरए, 20.दिट्ठ लाभिए, 21 अदिट्ठ लाभिए, 22. पुट्ठ लाभिए, 23.अपुट्ठ लाभिए, 24. भिक्ख लाभिए, 25. अभिक्ख लाभिए, 26. अण्ण गिलायए, 27.ओवणिहिए, 28.परिमिय पिंड वाइए, 29.सुद्धेसणिए, 30.संखादत्तिए।

**भिक्षाचर्या के 30 भेद** : 1. दव्वाभिग्गह (द्रव्याभिग्रह चरक)-द्रव्य विशेष का अभिग्रह धारण कर भिक्षाचर्या करना, 2.खेत्ताभिग्गह चरए (क्षेत्राभिग्रह चरक) स्वग्राम परग्राम अमुक मोहल्ला आदि क्षेत्र विशेष का अभिग्रह लेकर भिक्षाचर्या करना, 3.कालाभिग्रह चरए (कालाभिग्रह चरक) प्रातः काल दोपहर आदि काल विशेष का अभिग्रह धारण कर भिक्षाचर्या करना, 4.भावाभिग्गह चरए (भावाभिग्रह चरक) हंसते, गाते तथा ऐसी ही अन्य किसी क्रिया करते हुए या अमुक रंग के कपड़े पहने हुए स्त्री, पुरुष या

बालिका भिक्षा दे तो लेना इस प्रकार अभिग्रह धारण कर भिक्षाचर्या करना, 5.उक्खित चरए(उत्क्षिप्त चरक) गृहस्थ द्वारा प्रयोजनवश पाक पात्र (पकाने के बर्तन) से निकाले हुए आहार की गवेषणा करना, 6.णिक्खित्त चरए (निक्षिप्त चरक) पकाने के बर्तन से बाहर न निकाले हुए यानी पाक पात्र में ही रखे हुए आहार की गवेषणा करना, 7.उक्खित्त णिक्खित्त चरए(उत्क्षिप्त निक्षिप्त चरक) पकाने के पात्र से निकाल का उसी में अथवा अन्य पात्र मं डाले हुए आहार की गवेषणा करना अथवा उत्क्षिप्त और निक्षिप्त दोनो प्रकार के आहार की भिक्षा करना, 8.णिक्खित्त अक्खित्त चरए (निक्षिप्तोत्क्षिप्त चरक) भोजन के बर्तन में डाले हुए और अपने लिये उसमें से निकाले हुए आहार की गवेषणा करना, 9. वट्टिज्जमाणचरए (परिवेष्यमाण चरक) परोसे जाते हुए आहार की भिक्षाचर्या करना, 10.साहरिज्जमाण चरए (संहियमाण चरक) ठंडा करने के लिये थाली, वस्त्र आदि पर फैला कर वापिस बर्तन में डाले जाते हुए आहार की गवेषणा करना, 11. उवणीअचरए (उपनीत चरक) किसी के द्वारा किसी के लिये लाये हुए पकवान आदि की भिक्षाचर्या करना अथवा दाता द्वारा प्रशंसित आहार की भिक्षाचर्या करना, 12. अवणीअ चरए (अपनीत चरक) देय (देने योग्य) द्रव्य में से निकाल कर अन्यत्र रखे हुए आहार का गवेषणा करना। अथवा दाता द्वारा निन्दित आहार की गवेषणा करना, 13 उवणीअ अवणीअ चरए (उपनीतापनीत चरक) किसी के लिये किसी के द्वारा लाये हुए पकवान आदि में से दूसरी जगह रखे हुए आहार की गवेषणा करना। अथवा उपरोक्त उपनीत और अपनीत दोनों प्रकार के आहार की गवेषणा करना। अथवा गुण विशेष से प्रशंसित और दूसरे गुण की अपेक्षा निंदित आहार की भिक्षाचर्या करना जैसे यह जल शीतल है पर स्वाद में खारा है, 14. अवणीअ उवणीअ चरए(अपनीतोपनीत चरक) उपरोक्त अपनीत और उपनीत दोनों प्रकार के आहार की गवेषणा करना। अथवा दाता द्वारा एक गुण की अपेक्षा निंदित और दूसरे गुण की अपेक्षा प्रशंसित आहार की गवेषणा करना। जैसे यह पानी खारा है पर शीतल है, 15. संसट्ठचरए (संसृष्ट चरक) खरड़े हुए हाथ आदि ये दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना, 16.असंसट्ठ चरए

(असंसृष्ट चरक) बिना खरड़े हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना, 17.तज्जाय संसट्ठ चरए (तज्जात संसृष्ट चरक) देय पदार्थ अथवा उस जैसे अन्य पदार्थ से भरे हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना। 18. अण्णाय चरए (अज्ञात चरक) अपना अथवा अपने स्वजन सम्बन्धी का परिचय न देकर भिक्षाचर्या करना अथवा अज्ञात कुल से आहार की गवेषणा करना, 19. मोण चरए (मौन चरक) मौन रहकर भिक्षाचर्या करना, 20. दिट्ठलाभिए चरए(दृष्ट लाभिक) दृष्ट (देखे हुए) आहार की भिक्षा लेना। अथवा पहले-पहले दिखाई देने वाले दाता से ही भिक्षा ग्रहण करना, 21.अदिट्ठ लाभिए (अदृष्ट लाभिक)-अदृष्ट (बिना देखे हुए) आहार की गवेषणा करना अथवा पहले नहीं देखे हुए दाता से भिक्षा ग्रहण करना, 22.पुट्ठलाभिए (पृष्टलाभिक) हे साधो! आपको क्या दिया जाय? इस प्रकार प्रश्न पूछे जाने पर भिक्षा ग्रहण करना, 23.अपुट्ठ लाभिए(अपृष्ट लाभिक) बिना प्रश्न पूछे दाता आहार देवे तो उससे भिक्षा लेना, 24. भिक्ख लाभिए (भिक्षा लाभिक) रुखे सूखे तुच्छ आहार की गवेषणा करना अथवा तिरस्कार पूर्वक अवहेलना करते हुए थोड़ा आहार देवे तो लेना, 25. अभिक्ख लाभिए (अभिक्षा लाभिक) सरस अच्छे आहार की गवेषणा करना अथवा आदरपूर्वक प्रशंसा करते हुए बहुत आहार देवे तो लेना, 26. अण्णगिलायए (अन्न ग्लायक) जो भोजन के बिना ग्लानि पाता है वह अन्न ग्लायक है। यह अभिग्रह विशेष से प्रातः काल ही रात्रि का अन्न यानी

(टीका में दोषान्नभुगिति लिखा है इसका अर्थ रात्रि के बासी भोजन को खाने वाले होता है।)

बासी ठंडे भोजन की गोचरी कर उसका आहार करना है। 27. ओवणिहिए )औपनिहितिक नजदीक घरों से भिक्षा करना अथवा दाता के पास रखा हुआ आहार ग्रहण करना, 28. परिमिय पिण्ड वाइए (परिमित पिण्डपातिक) प्रमाण सहित गिनकर आहार लेना, 29. सुद्धेसणिए (शुद्धैषणिक) शुद्ध शंकादि दोष रहित आहार की गवेषणा करना अथवा शुद्ध

बिना मसाला का कूर आदि आहार ग्रहण करना, 30.संखादत्तिए (संख्यादत्तिक) धार टूटे बिना एक बार में जितना आहारया पानी पात्र मे गिरे उसे दत्ति (दात्त) कहते है। दात की संख्या का नियम करके आहार लेना।

### 4.रस परित्याग

जीव के स्वाद को छोड़ना, विकार पैदा करने वाले घी, दूध, दही आदि विगयों का त्याग करना, स्निग्ध, गरिष्ठ भोजन न करना, तली हुई, चटपटी मिर्च मसालों वाली स्वादिष्ट वस्तुओं का त्याग करना रस परित्याग है।

**रस परित्याग के 9 भेद** : 1. अभी जो नीवी तप करते हैं जिस में छाछ के साथ लूखी रोटी खाते हैं इसका भी णिव्वियतिए में ही समावेश होता है।

1.णिव्वियतिए (निर्विकृतिक) घी, तेल, दूध, दही, गुड, चीनी आदि विगयों से रहित आहार करना, 2. पणीअ उस परिच्चाए (प्रणीत रस परित्याग) जिसमें घी, दूध आदि झर रहा हो ऐसे स्निग्ध गरिष्ठ आहार का त्याग करना, 3.आयंबिलए (विगय और मसाला रहित भात, उड़द आदि अचित्त पानी के साथ खाकर आयंबिल तप करना, 4. आयमसित्थ भोई ओसामण में पड़े हुए चाँवल आदि के दानों का आहार करना, 5. अरसाहारे हींग आदि का बघार नहीं दिया हुआ नीरस आहार करना, 6.विरसहारे पुराने हो जाने से जिनका रस चला गया है यानी सत्त्व नहीं रहा है ऐसे धान्य भात आदि का आहार करना, 7.अंताहारे जघन्य निम्न कोटि के चना दाल आदि का आहार करना, 8. पंताहार उपरोक्त चना, दाल आदि भी जो खाने के बाद बचे हो उनका आहार करना अथवा बासी-ठंडा आहार करना, 9.लूहाहारे रुक्ष रुखे सूखे पदार्थों का आहार करना।

(कहीं-कहीं लूहाहारे के बदले तुच्छाहारे मिलता है। तुच्छाहारे का अर्थ है तुच्छ यानी अल्प और असार वस्तुओं का आहार करना।)

### 5. कायक्लेश

कर्मों की निर्जरा के लिये उग्र वीरासन आदि आसन करना, शरीर की शोभा शुश्रूषा का त्याग करना इस प्रकार शरीर को कष्ट पहुँचाना कायक्लेश तप है।

**कायक्लेश तप के तेरह प्रकार हैं :** 1.ठाणट्ठितिए (स्थानास्थितिक) कायोत्सर्ग करके खड़े रहना। 2.ठाणाइए (स्थानातिग) अतिशय रुप से कायोत्सर्ग करना। कायोत्सर्ग किये बिना खड़ा रहना भी इसका अर्थ होता है ऐसी धारणा है, 3. उक्कुडु आसणिए (उत्कटुकासनिक) उकडु आसन से बैठना, 4. पडिमट्ठाई (प्रतिमास्थायी) एक मासिकी, दो मासिकी, आदि पड़िमा अंगीकार करके विचरना, 5. वीरासणिए (वीरासनिक) वीरासन लगाकर बैठना। जमीन पर पैर रख कर सिंहासन पर बैठे हुए पुरुष के नीचे से सिंहासन हटा लेने पर जो अवस्था रहती है वह वीरासन कहलाता है, 6. नेसज्जिए (नैषद्यिक) - निषद्या यानी पालथी (आलखी पालकी) मार कर बैठना, 7. दंडायए (दंडायतिक) डंडे की तरह लम्बे लेट कर पड़े रहना, 8. लउंडसाई (लगण्डशायी) टेढ़ी लकड़ी की तरह पैर कह दोनों एड़ी और सिर भूमि पर लगा कर शरीर को शेष भाग ऊपर उठाकर सोना अथवा केवल पीठ ही को भूमि पर लगाकर और शरीर का शेष भाग ऊपर उठाकर सोना, 9.आयावए(आतापक) - शीतकाल में शीत में और उष्ण काल में धूप में, आसन विशेष से बैठकर सोकर अथवा खड़े रहकर ठंड और धूप से शरीर को संतप्त करना, 10. अवाउडए (अप्रावृतक) शीतकाल में बिना वस्त्र के खुले मैदान में कायोत्सर्ग करना, 11.अकंडूअए (अकंडूयक) शरीर को न खुजलाना, 12. अणिट्ठूहए (अनिष्ठीवक) थूक नहीं थूकना, 13. सव्वगायपरिकम्मविभूसविप्पमुक्के (सर्वगात्र परिकर्म विभूषा विप्रमुक्त) शरीर के सभी अंगों का संस्कार न करना, शरीर की विभूषा न करना।

## 6.पडिसंलीणया (प्रतिसंलीनता)

प्रतिसंलीनता का अर्थ है गोपन करना। इन्द्रिय कषाय और योगों की अशुभ प्रवृत्तियों से आत्म गुणों की रक्षा करना प्रतिसंलीनता तप है।

**प्रतिसंलीनता तप के 13 भेद है :** 1-5 इन्द्रिय प्रतिसंलीनता श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनिन्द्रिय इन पाँच इन्द्रियों का अपने अपने विषयों (शब्द, रुप, गन्ध, रस और स्पर्श) की ओर जाने से

रोकना और प्राप्त पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में राग और प्रतिकूल विषयों में द्वेष न करना, 6-9 कषाय प्रतिसंलीतना - क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हो जाने पर इन्हें निष्फल बनाना, 10-12. योग प्रतिसंलीनता के 3 भेद-मन प्रतिसंलीनता - मन की अकुशल-अशुभ प्रवृत्ति पर निग्रह करना और कुशल यानी शुभ प्रवृत्तियों को मन में प्रवर्ताना, वचन प्रतिसंलीनता-अशुभ वचन पर नियंत्रण करना और शुभ-निर्दोष सत्य वचन कहना, मौन रखना, काया प्रतिसंलीनता - हाथ पैर की चेष्टाओं को वष में करना यानी हाथ पैर से बुरी हिंसाकारी हरकतें न करना, कछुए की तरह इन्द्रियों का गोपन करना और शरीर के सभी अंगों पा काबू रखना, 13. विविक्त सयणासण सेवणया (विविक्त शयनासन सेवनता) स्त्री, पशु, नपुंसक रहित मकान, आराम, उद्यान, सभा, प्याऊ आदि स्थानों में प्रासुक एषणीय पाट, पाटला, शय्या, संस्तारक ग्रहण करके रहना।

## 7.प्रायश्चित

धारण किये हुए व्रतों में प्रमाद से लगने वाले दोषों की जिससे शुद्धि हो उसे प्रायश्चित कहते हैं

**प्रायश्चित के 50 भेद** - दस प्रकार का प्रायश्चित, दस प्रकार का प्रतिसेवना, प्रायश्चित देने वाले के दस गुण, प्रायश्चित लेने वाले के दस गुण, प्रायश्चित (आलोचना) के दस दोष।

**दस प्रकार के प्रायश्चित** -.आलोयणा (आलोचना) व्रतों में(मूल गुण उत्तरगुण में) प्रमाद वश लगे हुए दोषों को गुरु के समक्ष शुद्ध भाव से स्पष्ट शब्दों में प्रकट करना, 2. पडिक्कमण (प्रतिक्रमण) प्रतिक्रमण का अर्थ है दोषों से पीछे हटना यानी व्रतों में लगे हुए दोषों के लिये पश्चाताप करते हुए मिच्छामि दुक्कडं देना और पुनः दोष न लगे इसके लिये सावधान रहना, 3. तदुभय-आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करना, 4. विवेगारिहे (विवेक)- अशुद्ध अकल्पनीय आहारादि आ जाय और पीछे से उसका सदोष होना मालूम हो जाय तो उसे परठ देना, 5.विउसग्गे (व्युत्सर्ग) शरीर और वचन के

व्यापारों का त्याग कर कायोत्सर्ग करना, 6. तप–अनशनादि बाह्य तप करना, 7. छेद–दोष के अनुसार दीक्षा पर्याय का छेद करना यानी दीक्षा पर्याय में कमी कर देना। 8. मूल–पुनः व्रत आरोपण करना यानी नई दीक्षा देना, 9. अणवट्ठाप्परिह (अनवस्थाप्यार्ह) दोष विशेष का सेवन करने पर महाव्रतों से अलग कर दोष शुद्धि के लिये तप विशेष कराना और तप द्वारा दोष की शुद्धि हो जाने पर पुनः दीक्षा देना, 10. पारांचियारिहे (पारांचिकाई) गच्छ से बाहर निकाल कर साधु वेष का त्याग कर गृहस्थ वेष पहिना कर, छः महीने से लगा कर बारह वर्ष तक अलग रखना और उत्कृष्ट तप कराना बाद में नई दीक्षा देकर गच्छ में शामिल करना। वज्र ऋषभ नाराच संहनन वाले चौदह पूर्वधारी के रहते नवाँ दसवाँ प्रायश्चित दिया जाता है।

**दस प्रकार की प्रतिसेवना** : प्रतिसेवना अर्थात् प्राणतिपात आदि दोषों का सेवन करना। इसके भेद हैं

**दप्प पमायाणाभोगे, आउरे आवती सुय।**

**संकिते सहसक्कारे, भय प्पयोसा य वीमंसा।।**

**प्रतिसेवणा : 1.दर्प** – अहंकार वश संयम की विराधना करना, उछलना आदि आगम निषिद्ध क्रियाओं का सेवन कर प्राणातिपातादि दोष लगाना, **2.प्रमाद** – पांच प्रमाद–मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा के वश हो कर संयम की विराधना करना, काम विकार परिहास विकथा के वश होकर प्राणातिपात आदि दोषों का सेवन करना। शास्त्र विहित क्रिया में प्रयत्न न करना, **3.अनाभोग** – उपयोग नहीं होने से अज्ञान वश संयम में दोष लगाना, **4.आतुर**–भूख प्यास से पीड़ित होकर अथवा रोग से व्याकुल होकर संयम में दोष लगाना, **5. आपत्ति**–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से आपत्ति आने पर संयम में दोष लगाना। द्रव्य आपत्ति – प्रासुक निर्दोष आहार पानी का न मिलना। क्षेत्र आपत्ति–मार्ग में अटवी या भयंकर जंगल में रहना पड़े वहाँ आने वाली आपत्ति। काल आपत्ति – दुष्काल पड़ने पर उत्पन्न आपत्ति। भाव

आपत्ति – बीमार या अस्वस्थ होने से उत्पन्न आपत्ति।, **6.शंकित** – अनेषणीय आहार होने की शंका होने पर भी उसे लेकर प्राणातिपात आदि दोषों का सेवन करना, **7. सहसाकार** – सहसा बिना सोचे समझे यकायक कार्य कर प्राणातिपात आदि दोषों का सेवन करना, पडिलेहणा किये बिना ही कोई काम कर लेना, **8.भय** – राजा चोर आदि के डर से प्राणातिपात आदि दोष लगाना, **9. प्रद्वेष** – द्वेष या ईर्ष्या के वश संयम में दोष लगाना, **10. विमर्श** – शिष्य आदि की जाँच (परीक्षा) के लिये संयम में दोष लगाना।

**प्रायश्चित देने वाले के 10 गुण** : **1.आचारवन्त**–ज्ञानादि पाँच आचार वाला, **2. अवधारणवान** – प्रायश्चित का ज्ञाता या आधारवान, आलोचना करने वाले के सभी अतिचार दोषों को मन में ही रखने वाला, **3. व्यवहारवान**–आगम, सूत्र, आज्ञा, धारणा और जीत इन पाँच व्यवहारों का ज्ञाता, **4. अपव्रीडक**–लज्जावश दोषों को छिपाने वाले शिष्य की लज्जा दूर कराने वाला, **5. प्रकुर्वक**–आलोचना किये गये दोष को प्रायश्चित देकर शुद्धि कराने में समर्थ, **6. अपरिस्त्रावी**–आलोचित दोषों को दूसरे के सामने प्रकट नहीं करने वाला, **7. निर्यापक** – एक साथ पूरा प्रायश्चित लेने में असमर्थ साधु को खण्ड में प्रायश्चित देकर निर्वाह करने वाला, **8.अपायदर्शी**– आलोचना नहीं करने से परलोक का भय तथा दूसरे दोष बताने वाला, **9. प्रियधर्मी**–जिसको धर्म प्रिय लगता है, **10.दृढ़धर्मी** – जो धर्म में दृढ़ हो।

**प्रायश्चित लेने वाले के दस गुण** – **1. जाति सम्पन्न**–उत्तम जाति वाला, मातृ पक्ष को जाति कहते हैं, **2. कुल सम्पन्न** – उत्तम कुल वाला, पितृ पक्ष को कुल कहते हैं, **3. विनय सम्पन्न** – विनय वाला, **4. ज्ञान सम्पन्न** – ज्ञान वाला, **5. दर्शन सम्पन्न** – शुद्ध श्रद्धा वाला, **6. चारित्र सम्पन्न** – उत्तम चारित्र पालने वाला, **7. क्षान्त** – क्षमा धारण करने वाला, **8. दान्त** – इन्द्रियों को दमन करने वाला जितेन्द्रिय, **9. अमायी**–माया कपट

रहित अर्थात सरल परिणामों वाला, **10.अपच्छाणुतावी** (अपश्चातापी) – आलोचना करने के बाद पश्चाताप न करने वाला।

## प्रायश्चित के दस दोष

**आकंपइत्ता अणुमाणइत्ता, जं दिट्ठं बायरं च सुहुमं वा।**
**छण्णं सद्दाउलगं, बहुजण अव्वत्त तस्सेवी।।**

**1. आकंपइत्ता** – काँपते–काँपते आलोचना करे, **2. अणुमाणइत्ता** – अनुमान लगाकर आलोचना करे, यानी पहले पूछे कि अमुक दोष का क्या प्रायश्चित है? इस तरह प्रायश्चित मालूम करके फिर ठीक लगे तो आलोचना करे, **3.दिट्ठ**–दोष सेवन करते किसी ने देख लिया हो तो आलोचना करे, नहीं देखा हो तो आलोचना नहीं करे, **4. बायर** – बादर बड़े–बड़े दोष की आलोचना कर सूक्ष्म (छोटा) दोष छिपा लेवे, **5. सुहुम** – सूक्ष्म छोटे–छोटे दोष की आलोचना करे, बड़े दोष छिपा लेवे, **6. छण्ण** – लज्जावश कोई सुन न ले इस ख्याल से धीमे–धीमे बोलकर आलोचना करे, **7. सद्दाउलग** – दूसरों के सुनाने के लिये जोर–जोर से बोलकर आलोचना करे, **8.बहुजण**– एक ही दोष की अनेक गीतार्थ मुनियों के पास आलोचना करे, **9. अव्वत्त** – जिसे प्रायश्चित का ज्ञान नहीं है ऐसे अगीतार्थ मुनि के पास आलोचना करे, **10. तस्सेवी** – जिस दोष की आलोचना करनी है उसी दोष का सेवन करने वाले साधु के पास आलोचना करे।

## 8.विनय

ज्ञान आदि सद्गुणों मे एवं इन गुणों के धारक महापुरुषों में बहुमान रखना उनको उचित सत्कार सम्मान देना विनय कहलाता है। विनय के सात भेद है – 1.ज्ञान विनय, 2. दर्शन विनय, 3. चारित्र विनय, 4.मन विनय, 5. वचन विनय, 6.काय विनय, 7. लोकोपचार विनय।

**1.ज्ञान विनय** : ज्ञान और ज्ञानी के प्रति श्रद्धा भक्ति बहुमान रखना,

विनय पूर्वक विधि के साथ ज्ञान ग्रहण करना, उसका अभ्यास करना विनय है। ज्ञान विनय के 5 भेद – 1.मतिज्ञान विनय, 2. श्रुतज्ञान विनय, 3. अवधि ज्ञान विनय, 4. मनः पर्ययज्ञान विनय, 5. केवलज्ञान विनय।

**2. दर्शन विनय** : अरिहन्त देव, पंचम महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ गुरु और केवली भाषित धर्म पर श्रद्धा रखना दर्शन है। दर्शन और दर्शनवान् के प्रति बहुमान भक्ति रखना दर्शन विनय है। दर्शन विनय के दो भेद हैं–शुश्रूषा विनय और अनाशातना विनय। शुश्रूषा विनय के दस भेद – 1. अब्भुट्ठाणे (अभ्युत्थान), गुरु महाराज एवं रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े) को आते देखकर खड़े हो जाना, 2. आसणाभिग्गहे (आसानाभिग्रह)–आसन ग्रहण करने के लिये आमन्त्रित करना अथवा जहाँ बैठना चाहते हों वहाँ आसन ले जाना, 3. आसणप्पदाणे–उनके लिये आसन बिछाना, 4.सक्कारे (सत्कार)–उनका सत्कार करना, 5. सम्माणे–उन्हें सम्मान देना, 6. किइकम्मे (कृतिक्रर्म)–उनका गुणगान करना, उनकी स्तुति करना, 7. अंजलिपग्गहे (अंजलीप्रग्रह) हाथ जोड़कर सामने खड़े रहना, 8.एंतस्स अणुगच्छणया (आगच्छतः अनुगमनता)–गुरु महाराज आ रहे हों तो उनके सामने जाना, 9. पज्जुवासणया (पर्युपासनता)–जब तक विराजे तब तक उनकी सेवा करना, 10. गच्छंतस्स पडिसंसाहणया (गच्छतः प्रतिसंसाधनता) – गुरु महाराज जा रहे हों तो उनक पीछे–पीछे जाना यानी उन्हें पहुँचाने जाना।

**अनाशातना विनय के 15 भेद** – अरिहन्त भगवान, अरिहन्त प्ररुपित धर्म, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, कुल, गण, संघ, क्रियावन्त, सांभोगिक, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवल ज्ञान–इन पन्द्रह के गुणों की स्तुति करना। इस तरह अनाशातना विनय के 15 भेद हुए।

**3. चारित्र विनय के 5 भेद** : 1. सामायिक चारित्र विनय, 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय, 3. परिहार विशुद्धि चारित्र विनय, 4. सूक्ष्मसंपराय चारित्र विनय, 5. यथाख्यात चारित्र विनय।

**4. मन विनय के दो भेद :** अप्रशस्त मन विनय और प्रशस्त मन विनय। अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद - 1. **सावज्जे**-सावद्य, 2. **सकिरिए**-सक्रिय(कायिकी आदि क्रिया युक्त), 3.**सकक्कसे**-सकर्कश (कर्कश-कठोर भान सहित), 4. **कडुए**-कटुक (अनिष्ट), 5. **णिट्ठुरे** - निष्ठुर (मृदुता रहित) 6.**फरुसे**-परुष (स्नेह रहित), 7. **अण्हयकरे**-आश्रवकारी (अशुभ कर्म का आश्रव करने वाला), 8. **छेयकरे**-छेदकारी (हाथ आदि का छेदन करने वाला), 9. **भेदकरे** -भेदकारी (नासिकी आदि का भेदन करने वाला), 10. **परितावणकरे**-परितापनाकारी (प्राणियों को सतप्त करने वाला) 11. **उद्दवणकरे**-उपद्रवकारी(मरणान्तिक वेदना पहुंचाने अथवा धन हरण आदि उपद्रव करने वाला) 12. **भूओवघाइए** -भूतोपघातक (प्राणियों की हिंसा करने वाला)। उपरोक्त अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद मन के विशेषण हैं अर्थात इन बारह विशेषण युक्त मन को होना अप्रशस्त मन विनय है। इन बारह बोल सहित अप्रशस्त भाव युक्त मन न प्रवर्तावे। प्रशस्त मन विनय के भी बारह भेद होते है। अप्रशस्त मन विनय के बारह बोलों से विपरीत। 1.**असावज्जे**-निरवद्य, 2. **अकिरिए**-अक्रिय, 3. **अकक्कसे**-अकर्कश, 4. **अकडुए**-अकटुक (इष्ट), 5.**अणिट्ठुरे**-अनिष्ठुर, 6. **अफरुसे**-अपरुष, 7.**अभेयकरे**-अभेदकारी, 10.**अपरितावणकरे**-परितापना रहित, 11. **अणुद्दवणकरे**-उपद्रव रहित, 12. **अभूओवघाइए** - अभूतोपघतक-इन बारह बोल सहित प्रशस्त भाव युक्त मन प्रवर्तावे।

**5.वचन विनय के भी** - अप्रशस्त वचन विनय और प्रशस्त वचन विनय-दो भेद हैं। दोनों के बारह भेद मन विनय की तरह समझना।

**6. काय विनय के दो भेद** - अप्रशस्त काय विनय और प्रशस्त काय विनय। अप्रशस्त काय विनय के सात भेद - 1. **अणाउत्तंगमणे** - बिना उपयोग के असावधानी के साथ जाना, 2. **अणाउत्तंठाणे** - बिना उपयोग के असावधानी से खड़ा होना, 3. **अणाउत्तं निसीदणे** - बिना उपयोग के

असावधानी के साथ बैठना, 4. **अणाउत्तं तुअट्टणे** – बिना उपयोग के असावधानी से लेटना, 5. **अणाउत्तं पल्लंघणे** – बिना उपयोग असावधानी के से उल्लंघन करना **6.अणाउत्तं पल्लंघणे** – बिना उपयोग के आसावधानी से बार-बार उल्लंघन करना, 7. **अणाउत्तं सव्विंदिय काय जोग जुंजणया** – बिना उपयोग के असावधानी के साथ सभी इन्द्रियों और काय योग की प्रवृत्ति करना। प्रशस्तकाय विनय के सात भेद – उपयोगपूर्वक सावधानी के साथ – 1.जाना, 2. खड़ा होना, 3. बेठना, 4. सोना, 5. उल्लंघन करना, 6. बार बार उल्लंघन करना और 7. सभी इन्द्रियों और काययोग कर प्रवृत्ति करना।

**लोकोपचार विनयक सात भेद – 1. अब्भासवत्तियं**-गुरु के समीप रहना, **2.परछदंाणुवत्तिय**-गुरु तथा बड़ों के इच्छानुसार प्रवृत्ति करना, **3. कज्जहेउं**-ज्ञानादि की प्राप्ति के लिये उन्हें आहारादि लाकर देना, **4.कयपडिकिरिया** – गुरु तथा बड़ों ने मुझे ज्ञान सिखाया है इसलिये आहारादि लाकर उनकी सेवा करना, **5. अत्तगवेसणया**-बीमार साधुओं की वैयावच्च करना-उनकी सार सम्भाल करना, **6.देसकालण्णुया**-देश काल देखकर उचित प्रवृत्ति करना, **7. सव्वत्थेसु अपडिलोमया** – सभी कार्यों में गुरु महाराज के अनुकूल रहकर प्रवृत्ति करना। इस प्रकार विनय के 5+55+5+24+24+15+7=134 भेद हुए।

## 9.वैयावच्च (वैयावृत्त्य)

आचार्य, उपाध्याय आदि की आहार पानी आदि से तथा अन्य प्रकार से सेवा करना वैयावच्च है।

वैयावच्च के अधिकारी दस हैं – अतः वैयावच्च के भी दस भेद बताये गये हैं – 1. आचार्य की वैयावच्च, 2. उपाध्याय की वैयावच्च, 3. नवदीक्षित की वैयावच्च, 4. ग्लान-रोगी की वैयावच्च, 5. तपस्वी की वैयावच्च, 6. स्थविर (अवस्था, ज्ञान और दीक्षा पर्याय से जो स्थविर हो) की वैयावच्च, 7. स्वधर्मी साधु साध्वी की वैयावच्च, 8. कुल की वैयावच्च (कुल-एक

दीक्षाचार्य की शिष्य परिवार कुल कहलाता है।), 9.गण की वैयावच्च (गण-जुदे आचार्यों के शिष्य यदि परस्पर सहाध्यायी (साथ में अध्ययन करने वाले) होने से समान वाचना वाले हों तो उनका समुदाय गण कहलाता है।), 10. संघ की वैयावच्च(संघ-साधु , साध्वी, श्रावक, श्राविका रुप संघ है। कुलों के समुदाय को गण और गणों के समुदाय को संघ कहते हैं।

## 10. स्वाध्याय

पढ़ना, पढ़ाना, संदेह होने पर गुरु से पूछना, पढ़े हुये ग्रन्थ की पुनः पुनः आवृत्ति करना, मनन करना, धर्मोपदेश देना उसे स्वाध्याय कहते हैं

**स्वाध्याय के 5 भेद :** 1. वायणा(वाचना)-गुरु से सूत्र अर्थ पढ़ना, 2.पडिपुच्छणा (प्रतिपृच्छना)-शंका समाधान के लिए अथवा विशेष निर्णय के लिए प्रश्न करना, 3 परियट्टण (परिवर्तना)-सीखे हुए ज्ञान को बार-बार फेरना, 4.अणुप्पेहा (अनुप्रेक्षा)-सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान का मनन चिन्तन करना, 5.धम्मकहा(धर्मकथा) - धर्मोपदेश देना।

## 11. ध्यान

मन को प्रयत्न विशेष से भिन्न-भिन्न विषयों के चिन्तन से हटाकर एक की विषय पर स्थिर रखना ध्यान कहलाता है। ध्यान की यह व्याख्या छद्मस्थों के ध्यान की अपेक्षा से है। केवलज्ञानी की अपेक्षा से योगों का निरोध करना ध्यान कहलाता है। ध्यान चार हैं - 1.आर्त्तध्यान, 2. रौद्रध्यान, 3. धर्मध्यान, 4. शुक्लध्यान।

**आर्त्तध्यान के 4 भेद (पाया)- 1. अमणुण्ण संपओगसंपउत्ते -** अमनोज्ञ शब्दादि विषय एवं उनके साधनभूत वस्तुओं एवं व्यक्तियों का संयोग होने पर उनके वियोग का निरन्तर चिन्तन करना, **2. मणुण्ण संपओग संपउत्ते** मनोज्ञ शब्दादि विषय एवं उनके कारण रुप धन, स्वजन, सम्बन्धी की प्राप्ति होने पर उनका वियोग न हो इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करना, **3. आयंक संपओग संपउत्ते** - व्याधि जनित वेदना से दुःखी होकर उसकी

शांति के लिये निरन्तर चिन्तन करना, **4.परिजूसिय काम भोग संपओग संपउत्ते**–सेवित काम भोगों का कभी वियोग न हो इस सम्बन्ध में निरन्तर चिन्तन करना।

आर्त्तध्यान के चार भेदों से पहले दो भेद विषय सम्बन्धी और पिछले दो भेद रोग सम्बन्धी है ऐसी धारणा है।

**आर्त्तध्यान के चार लक्षण**–**1.कंदणया** (क्रन्दन)–ऊँचे स्वर से रोना चिल्लाना, **2.सोअणया**(शोचनता), दैन्य–दीनपना लाना, **3.तिप्पणया** (तेपनता)–टप टप आँसू गिरना, **4.विलवणया** (विलपनता) बार बार क्लिष्ट भाषण करना, विलाप करना।

**रौद्रध्यान के चार भेद (पाया)** – **1.हिंसाणुबन्धी**(हिंसानुबन्धी) – निर्दयता पूर्वक जीवों के वध, बन्ध, ताड़न, तर्जन आदि हिंसाकारी कार्यों का निरन्तर चिन्तन करना, **2. मोसाणुबन्धी** (मृषानुबन्धी)–माया वश सामने वाले को ठगने, धोखा देने हेतु निरन्तर मृषावाद–झूठ एवं हिंसाकारी भाषा का चिन्तन करना, **3. तेणाणुबन्धी** (स्तेनानुबन्धी)–तीव्र लोभ वश निरन्तर चोरी और चोरी के उपाय और साधनों का चिन्तन करना, **4.सारक्खणाणुबन्धी** (संरक्षणानुबन्धी)–प्राप्त शब्दादि विषयों और उनके साधनभूत धन धान्यादि के संरक्षण का निरन्तर चिन्तन करना और इन्हें छीनने वाले लोगों को फँसाने, पिटवाने, जेल दिलाने आदि उनके अनिष्ट का चिन्तन करना।

**रौद्रध्यान के चार लक्षण** : **1. उसण्णदोसे**–रौद्रध्यानी हिंसा, मृषावाद, अदत्तादान, परिग्रह आदि दोषों से विरत न होने से प्रायः इन दोषों मे से किसी दोष का सेवन करना रहता है, **2. बहुदोसे**–रौद्रध्यानी सदा बहुत से हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों का सेवन करने वाला होता है, **3.अण्णायदोसे**– कुशास्त्रों के बुरे संस्कारों के वश होकर रौद्रध्यानी हिंसादि अधर्म कार्यों में धर्म मानकर प्रवृत्ति करता है, **4. आमरणंत दासे**–रौद्रध्यानी को हिंसादि पाप कार्यों में कभी पशचाताप नहीं होता है, इसलिये वह मरण पर्यन्त

कालिया (कालसौकरिक) कसाई की तरह हिंसादि पाप कर्म मे प्रवृत्त रहता है।

**धर्मध्यान के चार भेद (पाया)**–**1. आणाविजए** (आज्ञाविचय)–वीतराग जिनेश्वर देव की क्या आज्ञा है इसका निर्णय करना तथा जिन प्रवचन के गुणों का चिन्तन करना, **2.अवायविजए** (अपायविचय) – राग,द्वेष, कषाय, मिथ्यात्व अविरति आदि दोषों से होने वाले ऐहिक और पारलौकिक अपाय–अनर्थ, हानियों का चिन्तन करना, **3. विवागविजए,** (विपाकविचय) कर्मों के विपाक फल का चिन्तन करना, संपत्ति, विपत्ति, संयोग, वियोग आदि स्वकृत शुभाशुभ, कर्मों के ही फल हैं, बांधे हुए कर्मों के फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है अतः समभाव पूर्वक शुभाशुभ कर्मों का फल भोगना ही श्रेयस्कर है।, **4 संठाणविजए** (संस्थान विजय) – लोक तथा द्वीप समुद्रादि के संस्थान–आकार का चिन्तन करना।

**धर्मध्यान के चार लक्षण** – **1. आणारुइ** (आज्ञारुचि) – जिनाज्ञा में रुचि–श्रद्धा रखना, **2. णिसग्गरुइ**(निसर्गरुचि )–बिना किसी उपदेश के, पूर्व संस्कारों के कारण, स्वभाव से ही जिन भाषित तत्त्वों में श्रद्धा रखना, **3. उवएसरुइ** (उपदेशरुचि)–साधु–सन्तों का उपदेश सुनकर तत्त्व ज्ञान समझ कर जिन भाषित तत्त्वों में श्रद्धर रखना, **4.सुत्तरुई** (सूत्ररुचि)–सूत्र पढ़कर वीतराग द्वारा प्रतिपादित तत्त्व समझना और समझकर श्रद्धा करना।

**धर्मध्यान के चार आलम्बन** – 1.वायणा, 2. पडिपुच्छणा, 3. परियट्टणा, 4.धम्मकहा। इनका स्वरुप स्वाध्याय में बताया जा चुका है।

**धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना)** : **1. अणिच्चाणुपेहा** (अनित्यानुप्रेक्षा)–संसार, सांसारिक पदार्थ एवं सम्बन्ध तथा शरीर की अनित्यता, नश्वरता का चिन्तन करना, **2. असरणाणुप्पेहा** (अशरणानुप्रेक्षा) माता, पिता, बहिन, भाई, स्त्री, पुत्री, मित्र आदि कोई भी इस आत्मा की जन्म जरा और मृत्यु के भय से तथा विविध व्याधि जन्य वेदना से रक्षा करने वाला नहीं है, इस प्रकार अशरण भाव का चिन्तन करना, **3.**

**एगत्ताणुप्पेहा** (एकत्वानुप्रेक्षा) – यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जाने वाला है। माता–पिता स्वजन सम्बन्धी तथा धन सम्पत्ति आदि कोई भी अपने नहीं हैं। यह शरीर तक अपना नहीं है। इस प्रकार आत्मा के एक असहाय होने का चिन्तन करना, **4. संसाराणुप्पेहा** (संसारानुप्रेक्षा)– यह जीव माता बनकर पुत्र बनता है, पुत्र होकर स्त्री होता है और स्त्री होकर बहिन होता है, इस प्रकार संसार की विचित्रता का एवं गति आरगति आदि के स्वरूप का चिन्तन करना

ग्रन्थों में धर्मध्यान के चार भेद इस तरह भी कहे गये हैं – 1.पिण्डस्थ, 2. पदस्थ, 3. रुपस्थ और 4. रुपातीत।

**1.पिण्डस्थ** : पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारुणी, तत्त्वरूपवती इन पाँच धारणाओं का एकाग्रता से चिन्तन करना पिण्डस्थ धर्मध्यान है। पिण्ड अर्थात् शरीर में रही हुई अपनी आत्मा में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपांध्याय और साधु के गुणों के चिन्तन को पिण्डस्थ ध्यान कहते हैं।

(पिण्डस्थ, पदस्थ, रुपस्थ अन तीनों ध्याानों का समावेश धर्मध्यान में होता है, रुपातीत चौथे ध्यान में सिद्ध के मूल गुण का ही चिनतन होता है, इससे यह ध्यान शुक्ल ध्यान के अन्तर्गत है।)

**2.पदस्थ** : नाभि में सोल पाँखुड़ी के, हृदय में चौबीस पाँखुड़ी के तथा मुख पर आठ पाँखुड़ी के कमल की कल्पना प्रत्येक पाँखुड़ी पर अ,आ,इ, ई आदि वर्ण माला के अथवा परमेष्ठी मन्त्र के अक्षरों की स्थापना कर एकाग्रता पूर्वक पदस्थ चिन्तन करना अथवा किसी पद का आश्रय लेकर मन को एकाग्र करना पदस्थ धर्मध्यान है। अरिहंत आदि पाँच परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण करके उनका चित्त में ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।

**3.रुपस्थ** : शास्त्रोक्त अरिहन्त भगवान के रुप को हृदय में स्थापित कर स्थिर चित्त से उनका चिन्तन करना रुपस्थ धर्मध्यान है। रुपी चीज में रही हुई भी मेरी आत्मा अरूपी अनन्तगुणी है। ऐसी विन्तना रुपस्थ ध्यान कहलाती है।

**4. रुपातीत** : रूप रहित निरंजन निराकार निर्मल सिद्ध भगवान के शुद्ध आत्म स्वरुप का अवलम्बन लेकर उसके साथ आत्मा की एकता का चिन्तन करना रुपातीत धर्मध्यान है।

**शुक्लध्यान के चार भेद : 1. पुहत्तवियक्कसवियारी** (पृथक्त्व वितर्क सविचारी)- जब ध्यान करने वाला पूर्वधर हो तो पूर्वों के ज्ञान के आधार से, अन्यथा संभवित श्रुत के आधार से एक द्रव्य विषयक उत्पत्ति, स्थिति, नाश, मुर्तता, अमूर्तता आदि अनेक पर्यायों का द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदि नयों की अपेक्षा पृथक् पृथक रूप से भेदप्रधान चिन्तन करना तथा उसी श्रुत के आधार से एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य में, द्रव्य से पर्याय में, एक पर्याय से दूसरी पर्याय में, शब्द से अर्थ में, अर्थ से शब्द में तथा एक योग ये दूसरे योग में, संक्रमण करना, पृथक्त्व वितर्क सविचारी शुक्ल ध्यान है, **2.एगत्त वियक्क अवियारी** (एकत्व वितर्क अविचारी) - पूर्व ज्ञान अथवा संभावित श्रुतज्ञान के आधार पर किसी एक ही द्रव्य अथवा पर्याय को लेकर उस पर अभेदप्रधान चिन्तन करना, तीन योगों में से किसी एक ही योग पर स्थिर रहना एकत्व वितर्क अविचारी शुक्लध्यान है। इस ध्यान में द्रव्य पर्याय शब्द अर्थ और योगों का परस्पर एक दूसरे से संक्रमण नहीं होता, **3.सुहुम किरिए अप्पडिवाई** (सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती) - मोक्ष जाने से पूर्व केवली भगवान मन योग, वचन योग और काया के स्थूल योग का निरोध कर लेते हैं तब काया की उच्छ्वास निःश्वास आदि सूक्ष्म क्रिया ही अवशिष्ट रहती है। परिणामों के बढ़े चढ़े होने से केवली भगवान इस अवस्था से नीचे नहीं गिरते। यह तीसरा सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती शुक्ल ध्यान है, **4.समुच्छिन्न किरिए अणियट्टी** (समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्त)-शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली भगवान सभी योगों का निरोध कर लेते हैं। योगों के निरोध कर लेने से श्वास उच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया भी उनके नहीं होती अर्थात् सभी क्रियाएं नष्ट हो जाती हैं। केवली भगवान इस अवस्था से वापिस नहीं लौटते हैं। यह चौथा समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्त शुक्ल ध्यान है। इस ध्यान में सभी आश्रव और बन्ध

का निरोध होकर सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं तब केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

शुक्ल ध्यान के पहले दो भेदों में श्रुत ज्ञान का आधार होता है और पिछले दो भेदों में श्रुतज्ञान का अलम्बन नहीं होता।

पहला शुक्ल ध्यान आठवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान में कुछ समय बाकी रहते तक होता है। बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में दूसरा शुक्ल ध्यान होता है। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में केवली भगवान सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती नामक तीसरा शुक्ल ध्यान ध्याते हुए क्रमशः मन वचन काया के योग तथा श्वासोच्छ्वास का निरोध करते हैं। फिर पाँच ह्रस्व अक्षरों का उच्चारण प्रमाण स्वल्प समय में शुक्लध्यान का चौथा भेद समुच्छिन्नक्रिया अनिवृति ध्याते हुए एक साथ चार अघाती कर्मों को क्षय करके मुक्त होते हैं।

**शुक्ल ध्यान के चार लक्षण : 1.विवेगे** (विवेक)–शरीर से आत्मा को भिन्न समझाना और आत्मा को सभी संयोगों से भिन्न समझाना, 2. **विउस्सग्गे** (व्युत्सर्ग) – निःसंगी यानी संग (आसक्ति) रहित होने से शरीर और उपाधि का त्याग करना, 3. **अव्वहे** (अव्यय) – देवादिक का उपसर्ग होने पर भी भयभीत होकर विचलित न होना, 4. **असंमोहे** (असंमोह) – देवादि की माया से मोहित न होना और सूक्ष्म पदार्थ विषयक चिन्तन में न उलझना।

**शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन – 1 खंती** (क्षमा) क्रोध का त्याग, **2.मुत्ति** (मुक्ति)–लोभ का त्याग, 3. **अज्जवे** (आर्जव)–माया का त्याग, 4. **मद्दवे** (मादर्व) – मान का त्याग।

**शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना) – 1. अवायाणुप्पेहा** (अपायानुप्रेक्षा) – प्राणातिपात मृषावाद आदि आश्रव द्वारों से होने वाले अनर्थों का चिन्तन करना, 2. **असुभाणुप्पेहा** (अशुभानुप्रेक्षा) – संसार के अशुभपन का चिन्तन करना, 3. **अणंतवत्तियाणुप्पेहा** (अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा)–

भव परम्परा का अन्त नहीं है। इस प्रकार भव परम्परा की अनन्तता का चिन्तन करना, **4. विपरिणामाणुप्पेहा** (विपरिणामानुप्रेक्षा) - वस्तुओं का प्रतिक्षण विविध रुपों में विपरिणमन-परिवर्तत होता रहता है। इस प्रकार वस्तुओं की अशाश्वतता का चिन्तन करना।

## 12.व्युत्सर्ग

व्युत्सर्ग का अर्थ त्याग है।

**व्युत्सर्ग के दो भेद है** - द्रव्य व्युत्सर्ग और भाव व्युत्सर्ग। द्रव्य व्युत्सर्ग के चार भेद - 1.शरीर व्युत्सर्ग-शरीर का त्याग करना यानी शरीर में ममत्व न रखना, 2.गणव्युत्सर्ग - गच्छ का व्युत्सर्ग (त्याग) का एकांत में ध्यान करना, जिन कल्प स्वीकार करना, 3. उपाधि व्युत्सर्ग - उपकरण कर त्याग करना, 4. भक्त पान व्युत्सर्ग - आहार पानी का त्याग करना।

**भाव व्युत्सर्ग के 3 भेद** - कषाय व्युत्सर्ग - क्रोध, मान, माया, लोभ रुप चार कषाय का त्याग करना। 2. संसार व्युत्सर्ग- नरकायु आदि के कारण रूप मिथ्यात्व आदि का त्याग करना। संसार व्युत्सर्ग के चार भेद - नैरयिक संसार व्युत्सर्ग,तिर्यंच संसार व्युत्सर्ग, मनुष्य संसार व्युत्सर्ग और देव संसार व्युत्सर्ग, 3. कर्म व्युत्सर्ग - ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के बन्ध के कारणों का त्याग करना। आठ कर्मों के भेद से कर्म व्युत्सर्ग के भी आठ भेद होते हैं

इस प्रकार निर्जरा के 20+15+30+9+13+13+50+134+10+5+48+7+354 भेद होते हैं।

**चिन्तन** : कर्मों का सम्बन्ध आत्मा के साथ अनादि काल से है। कर्म अपना फल अपनी कर्म सत्ता के साथ देता है। किन्तु कई कर्मों को कर्म विपाक उदय में आने के पहले ही जिस प्रयत्न विशेष के द्वारा जर-जरित किया जा सकता है, नष्ट हो सकता है उस प्रयत्न को निर्जरा कहते हैं। निर्जरा रूपी शस्त्र से मै कर्म रूपी शत्रु को नष्ट करूं। इस जीवन में अधिक से अधिक निर्जरा का आराधना करूं जिससे शीघ्र परम सुख को पाने में सफल बनूं।

# 8.बन्ध तत्त्व

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्मा के साथ कर्मवर्गणा का सम्बन्ध होकर क्षीर नीर अथवा अग्नि लोहपिण्ड की तरह एक रुप हो जाना बंध कहलाता है।

**बन्ध के चार भेद** – 1. प्रकृति बन्ध, 2.स्थिति बन्ध 3. अनुभाग बन्ध और 4. प्रदेश बन्ध।

**1.प्रकृति बन्ध** – जीव के साथ सम्बद्ध कर्म पुद्गलों में ज्ञान को आवरण करने, दर्शन को रोकने, सुख दुःख देने आदि जुदा-जुदा स्वभाव का होना प्रकृति बन्ध कहलाता है।

**2.स्थिति बन्ध** – जीव के साथ सम्बद्ध कर्म पुद्गलों की, अमुक काल तक ज्ञान को आवरण करने आदि रूप अपने अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए, जीव के साथ रहने की काल मर्यादा को स्थिति बन्ध कहते हैं।

**3.अनुभाग बन्ध** : कर्मों के फल देने की तीव्रता मन्दता आदि विशेष्ताओं का न्यूनाधिक होना अनुभाग बन्ध कहलाता है। अनुभाग बन्ध को अनुभाव बन्ध, अनुभव बन्ध तथा रस बन्ध भी कहते हैं।

**4.प्रदेश बन्ध** : जीव के साथ सम्बद्ध कार्मण वर्गणा के स्कंधों का न्यूनाधिक प्रदेश वाला होना प्रदेश बन्ध कहलाता है।

उक्त चार प्रकार के बन्ध का स्वरूप समझाने के लिए मोदक का दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे- सौंठ,पीपर, कालीमिर्च आदि वायु नाशक पदार्थों से बने हुए मोदक का स्वभाव वायु नाश करने का होता है। इसी प्रकार पित्त नाशक एवं कफनाशक पदार्थों से बने हुए मोदक का स्वभाव क्रमशः पित्त और कफनाश करने का होता है। इसी तरह जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कार्मण वर्गणा के स्कन्धों में से कुछ ज्ञान को ढकते हैं तो कुछ दर्शन को रोकते हैं, कुछ

सुख दुःख देते हैं तो कुछ आत्मा की शक्ति को ही दबा देते हैं। इस प्रकार आत्मा से सम्बद्ध कार्मण वर्गणा के स्कन्धों का जुदा-जुदा स्वभाव होना प्रकृति बन्ध है। जैसे कुछ मोदक एक सप्ताह तक, कुछ एक पक्ष तक, कुछ एक माह तक विकृत नहीं होते। इस मर्यादा के उपरान्त वे खराब हो जाते हैं। इसी प्रकार कोई कर्म आत्मा के साथ अन्तर्मुहूर्त तक, तो कोई बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम तक, कोई सत्तर कोड़ा-कोड़ी जुदा-जुदा काल मर्यादा तक अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए आत्मा के साथ रहना स्थिति बन्ध है। जैसे कोई मोदक अधिक मधुर होता है, कोई कम मधुर होता है। कोई मोदक, अधिक कटु होता है और कोई कम कटु होता है। इसी प्रकार कर्म पुद्गलों की मन्द, मन्दतर और मन्दतम तथा तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम शुभ अशुभ फल देने की शक्ति अनुभाग बन्ध है। जैसे मोदक परिमाण में दो तोले, पाँचे तोले, आध पाव और पाव-इस प्रकार भिन्न भिन्न परिमाण का होता है इसी प्रकार कर्म सकन्धों में न्यूनाधिक प्रदेशों का होना प्रदेश बंध है।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं। स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

8 कर्मों की 148 प्रकृति में से 120 प्रकृतियों का बन्ध होता है- ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28 में से समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय इन दो को छोड़कर 26, आयुकर्म की 4, नामकर्म की 93 में से 5 शरीर के बन्धन, 5 संघातन, 16 वर्णादि, इन 26 प्रकृतियों को छोड़कर, 67 गोत्र कर्म की 2 और अन्तराय कर्म 5, इस प्रकार 5+9+2+26+4+67+2+5=120

**चिन्तन** : पुण्य तथा पाप कर्म आश्रव के द्वारा आत्मा के समीप लाया जाता है किन्तु उन कर्म परमाणुओं का आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह, लोहा और अग्नि की तरह एकमेक करना बन्ध तत्त्व से ही है। बन्ध का मूल कारण कषाय और योग ही है। अतः अशुभ कर्म बंध से बचकर जब तक अबंधक नहीं बनूं तब तक शुभ कर्म बन्ध करना ही मेरे लिए हितकर होगा।

## 9.मोक्ष तत्त्व

बारहवें गुणस्थान में रहा हुआ मुनि अन्तिम समय में तीन घातीकर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म) का क्षय करके (मोहनीय कर्म का दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में क्षय हो चुका है) केवल ज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर शुक्ल ध्यान का दूसरा भेद ध्याता हुआ तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थान में जाता है। इस गुणस्थान मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व तक रहता है। अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर शुक्ल ध्यान का तीसरा भेदध्याता हुआ श्वास उच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया के सिवा मन, वचन और काय योग का निरोध करता है। तत्पश्चात् चौदहवें गुणस्थान में शैलेशी भाव अंगीकार कर शुक्ल ध्यान का चौथा भेद ध्याता हुआ चार अघाती कर्मों काक्षय करता है और एरंड बीज की तरह ऊर्ध्व गति करता हुआ लोक के अग्र भाग में स्थित सिद्धि क्षेत्र में, जहाँ अनन्त सिद्ध हैं, पहुंचकर वहाँ विराजमान होता है। आठ कर्मों के क्षय होने से सिद्धात्मा आठ गुण–अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनंत चारित्र, अटल अवगाहना, अमूर्ति, अगुरुलघु, अनन्त वीर्य से शोभित हैं। मोक्ष तत्त्व का नौ द्वारों से वर्णन किया जाता है – 1. सत्पद प्ररूपणा द्वार, 2. द्रव्य प्रमाण द्वारा, 3. क्षेत्र द्वार, 4. स्पर्शना द्वार, 5. काल द्वार, 6. अन्तर द्वार, 7. भाग द्वार, 8. भाव द्वार, 9. अल्पबहुत्व द्वार।

**1.सत्पद प्ररूपणा द्वार** – मोक्ष एक शुद्ध पद वाच्य होने से सत्यस्वरूप है किन्तु आकाश कुसुम की तरह असत्स्वरूप नहीं है। इस द्वार के अन्तर्गत चौदह मार्गणाओं द्वारा मोक्ष का वर्णन किया जाता है। चौदह मार्गणाएं ये हैं:–

**गइ इंदिय काए, जोए, वेय कसाय णाणेय।**
**संजम दंसण लेस्सा, भव सम्म सण्णी आहारे।।**

अर्थ – गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन,

लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक। इन चौदह मार्गणाओं के अवान्तर भेद 62 होते हैं। गति 4 इन्द्रिय 5 काय6, योग3, वेद 3, कषाय 4, ज्ञान 8 (5 ज्ञान 3 अज्ञान), संयम 7, (सामायिक आदि5 चारित्र, देश विरति चारित्र और अविरति), दर्शन 4, लेश्या 3, द्रव्य2 (भव्य अभव्य), सम्यक्त्व 6(औपशमिक, क्षायिक, सास्वादन, क्षायोपशमिक, मिश्र और मिथ्यात्व), संज्ञी 2, (संज्ञी, असंज्ञी), आहारक दो (आहारक, अनाहारक)। इन 62 मार्गणाओं मे से दस मार्गणाओं के जीव मोक्ष जा सकते हैं।

**णर गई पणिंदि तस भव, सण्णि अहक्खाय खइय सम्मत्ते।**
**मुक्खे अणाहार केवल, दंसणणाणे न सेसेसु।।**

अर्थ–मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस काय, भव्य, संज्ञी, यथाख्यात चारित्र (क्षायिक) सम्यक्त्व, अनाहारक, केवलज्ञान और केवल दर्शन इन दस मार्गणाओं में जीव मोक्ष जा सकता है। चार मार्गणा – कषाय, वेद, योग, और लेश्या सहिज जीव मोक्ष नहीं जा सकता।

**2. द्रव्य प्रमाण द्वार** – द्रव्य से सिद्ध जीव अनन्त हैं। अभव्य से अनन्त गुणे हैं

**3. क्षेत्र द्वार** – सिद्ध जीव चौदह राजू प्रमाण लोक के असंख्यातवें भाग में यानि 45 लाख योजन प्रमाण क्षेत्र मे अवस्थित हैं।

**4.स्पर्शना द्वार** – सिद्ध भगवान की जितनी अवगाहना है उससे स्पर्शना कुछ अधिक हैं। कारण यह है कि सिद्ध भगवान अपने अवगाहना प्रमाण क्षेत्र को तो स्पर्शते ही हैं किन्तु अवगाहना के चारों तरफ आसपास में रहे हुए आकाश प्रदेशों को भी स्पर्शते हैं, इसलिए अवगाहना से स्पर्शना कुछ अधिक है।

**5. काल द्वार** – एक सिद्ध की अपेक्षा सिद्ध जीव सादि अनन्त है और सभी की अपेक्षा अनादि अनन्त हैं।

**6. अन्तर द्वार** – सिद्धों में अन्तर नहीं पड़ता। सिद्ध जीव वापिस संसार

में नहीं आते और जहां एक सिद्ध है वहां अनन्त सिद्ध हैं, इसलिए अन्तर नहीं होना कहा गया है। केवल ज्ञान केवल दर्शन सम्बन्धी अन्तर भी सिद्धों में नहीं है। इनकी अपेक्षा भी सभी सिद्ध जीव समान है।

**7.भाव द्वार** – सिद्धों में क्षयिक और पारिणामिक ये दो भाव पाये जाते हैं।

**8.अल्पबहुत्व द्वार** – सबसे थोड़े नपुंसक लिंग सिद्ध है। स्त्रीलिंग उनसे संख्यात गुण अधिक है और उनसे भी पुरुष लिंग सिद्ध संख्यात गुणा है। कारण यह है कि नपुंसक एक समय में उत्कृष्ट दस मोक्ष जा सकते हैं। स्त्री एक समय में उत्कृष्ट बीस और पुरुष एक समय में 108 मोक्ष जा सकते हैं।

**सिद्धों क पन्द्रह भेद** – 1 तीर्थ सिद्ध, 2. अतीर्थ सिद्ध, 3. तीर्थंकर सिद्ध, 4. अतीर्थंकर सिद्ध,5. स्वयं बुद्ध सिद्ध, 6. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध, 7. बुद्ध बोधित सिद्ध, 8. स्त्रीलिंग सिद्ध, 9. पुरुषलिंग सिद्ध, 10. नपुंसक लिंग सिद्ध, 11. स्वलिंग सिद्ध, 12. अन्यलिंग सिद्ध, 13. गृहस्थलिंग सिद्ध, 14. एक सिद्ध, 15. अनेक सिद्ध।

**1.तीर्थ सिद्ध** – तीर्थ (जिन वचन, चतुर्विध संघ और प्रथम गणधर) की स्थापना होने के बाद जो सिद्ध होते हैं, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं – जैसे अर्जुन माली।

**2.अतीर्थ सिद्ध** – तीर्थ की स्थापना होने से पहले और तीर्थ का विच्छेद होने पर जो सिद्ध होते हैं वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं जैसे – मरुदेवी माता आदि।

**3.तीर्थंकर सिद्ध** – तीर्थंकर पद को प्राप्त कर जो मोक्ष में जाते हैं वे तीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं जैसे – अजितनाथजी।

**4.अतीर्थंकर सिद्ध** – सामान्य केवली होकर मोक्ष में जाने वाले अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते है जैसे – धन्नाजी।

**5.स्वयं बुद्ध सिद्ध** – जो दूसरों के उपदेश बिना स्वयंमेव बोध प्राप्त कर मोक्ष जाते हैं वे स्वयं बुद्ध सिद्ध कहलाते हैं जैसे तीर्थंकर आदि।

**6. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध** – जो किसी के उपदेश बिना ही पदार्थ विशेष को देखकर वैराग्य प्राप्त करते हैं और दीक्षा धारण कर मोक्ष जाते हैं वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध जैसे – नमिराज, करकंडू मुनि आदि।

**7.बुद्ध बोधित सिद्ध** – गुरु के उपदेश से बोध प्राप्त कर, दीक्षित होकर जो मोक्ष जाते हैं इन्हे बुद्ध बोधित सिद्ध कहते हैं जैसे जम्बू स्वामी।

**8. स्त्रीलिंग सिद्ध** – जो स्त्री पर्याय में रहते हुए मोक्ष जाते हैं उन्हे स्त्रीलिंग सिद्ध कहते हैं जैसे चन्दनबाला।

**9. पुरुषलिंग सिद्ध** – जो पुरुष पर्याय में रहते हुए मोक्ष में जाते है उन्हें पुरुषलिंग सिद्ध कहते हैं जैसे गौतम स्वामी।

**10.नपुंसक लिंग सिद्ध** – नपुंसक पर्याय में रहते हुए मोक्ष जाने वाले नंपुसक लिंग सिद्ध कहलाते है जैसे–भीष्म।

**11. स्वलिंग सिद्ध** – जैन साधु के वेष में रहते हुए मोक्ष जाने वाले स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं जैसे सुधर्मा स्वामी।

**12.अन्यलिंग सिद्ध** – अन्य मत के साधुओं के वेष में रह कर जो मोक्ष में जाते हैं उन्हें अन्यलिंग सिद्ध कहते हैं जैसे – वल्कल चीरी।

**13. गृहस्थ लिंग सिद्ध** – गृहस्थ के वेष में मोक्ष जाने वाले गृहस्थ लिंग सिद्ध कहलाते हैं जैसे – मरुदेवी माता।

**14. एक सिद्ध** – एक समय में अकेला ही मोक्ष जाने वाला जीव एक सिद्ध कहलाता है जैसे – महावीर स्वामी।

**15. अनेक सिद्ध** – एक समय में एक से अधिक यानी दो से लेकर एक सौ आठ तक मोक्ष में जाने वाले जीव अनेक सिद्ध कहलाते हैं जैसे – भगवान ऋषभ देव।

**जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होई सम्मत्तं।**
**भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणे वि सम्मत्तं।।**

जो जीवादि नव तत्त्वों को जानता है उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता हैं जीवादि

नव तत्त्व को नहीं जानने वाला भी यदि उन पर शुद्ध भाव से श्रद्धा रखता है तो उसे भी सम्यक्त्व प्राप्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला जीव संसार को परित्त-सीमित कर देता है एवं सम्यग् ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना कर सकल कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करता है।

**चिन्तन** : मोह कर्म प्रमुख आठों कर्मों को क्षय करके अव्यय, अक्षय, अव्याबाध सुख अनुभव करते का स्था है मोक्ष। मोक्ष में हर सिद्ध जीव में 4 भाव प्राण पाये जाते हैं। अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य। इन्हें प्रकट करने के लिए संयग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में पुरुषार्थ करना है। जिनशासन की यही विशेषता है, यहां मार्ग ही मंजिल बन जाता है। साधना ही साध्य बन जाता है। अब ऐसा पुरुषार्थ करूं, जिससे शीघ्र परम आनंद को प्राप्त करूं।

## नव तत्त्व का थोकड़ा

## पूर्ण हुआ।।

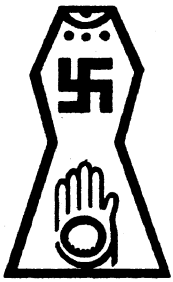

परस्परोपग्रहो जीवानाम

# NOTES

## उसको नहीं देखा

### तर्ज : उसको नहीं देखा

उसको नहीं देखा हमने कभी, पर उसकी जरूरत क्या होगी
ऐ माँ तेरी सूरत से अलग, भगवान की सूरत क्या होगी।।टेर।।
इन्सान तो क्या देवता भी, आंचल में पले तेरे,
है स्वर्ग इसी दुनिया में, कदमों के तले तेरे – 2
ममता ही लुटाए जिसके नयन ऐसी कोई मूरत क्या होगी।।1।।
क्यों धूप जलाए दुःखों की, क्यों गम की घटा बरसे
ये हाथ दुवाओं वाले, रहते है सदा सर पे
तू है तो अंधरेपन में हमें, सूरज की जरूरत क्या होगी।।2।।
कहते है तेरी शान में जो, कोई ऊँचे बोल नहीं
भगवान के पास भी माता, तेरे प्यार का मोल नहीं
हमतो यही जाने तुझसे बड़ी, संसार की दौलत क्या होगी।।3।।

परस्परोपग्रहो जीवानाम्